मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली बार : २१००
दूसरी बार : ३०००

सवा रुपया

मअी, १९५०

हिन्दी संस्करणके बारेमें

गुजरातीमें 'मरुकुंज' के दो संस्करण निकल चुके हैं। अब तीसरा संस्करण निकालनेका समय आ पहुँचा है। दूसरा संस्करण पहलेकी नकल ही था। तीसरे संस्करणमें मूल विषय कायम रखनेका निश्चय किया है। सिर्फ़ दो पूर्तियाँ निकाल डाली हैं और 'शस्त्रक्रिया' पर अेक नअी पूर्ति लिखी है। यह हिन्दी अनुवाद गुजरातीके तीसरे निर्धारित संस्करणका है।

राजरोगकी परिचर्यामें वर्षों हुअे, 'आहार-विहार-योग' अनिवार्य प्रतीत हुआ है। अुसमें शस्त्रक्रियाका अेक महत्त्वका तत्त्व बढ गया है। अुसके बारेमें नअी पूर्तिमें थोडेमें लिखा है। अिस पूर्तिको भी मेरे मित्र डॉ० जीवराज महेता देख चुके हैं।

बम्बअी, मथुरादास त्रिकमजी

२५-५-'४५

पुस्तकके विषयमें

जब मुझे राजरोग यानी क्षयकी विलक्षण बीमारी लगी और अिस बीमारीके सिलसिलेमें अेक अर्से तक पंचगनी रहना पड़ा, तो वहाँ रहते हुअे राजरोगके अनेक रोगियोंसे जान-पहचान हुअी और अिस रोग पर लिखी गअी पुस्तकें भी पढ़नेको मिलीं। अिस परसे मनमें यह विचार आया कि अिस विषयका सामान्य और अुपयोगी ज्ञान सरल गुजरातीमें लिख डाला जाय तो अच्छा हो। पंचगनीके डॉ० अेस० बी० वकीलने मेरी अिस अिच्छाका पोषण किया और अपने पासकी क्षय-सम्बन्धी अनेक पुस्तकोंका अुपयोग मुझे निःसंकोच भावसे करने दिया। अिस तरह अुन्होंने मेरी बड़ी मदद की और मेरी वाचन-लेखन-सम्बन्धी अिच्छाको आसानीसे तृप्त होने दिया। मेरा वाचन व लेखन पंचगनीमें ही सन् १९२८ के मध्यमें समाप्त हुआ। मेरा यह निबन्ध किसी पुस्तकका भाषान्तर नहीं है — अपने निजके वाचन, अनुभव और निरीक्षणका परिणाम है।

पुस्तककी हस्तलिपि तैयार होने पर मैंने अपनी बीमारीके दिनोंके मित्र और मार्गदर्शक डॉक्टर जीवराज महेतासे प्रार्थना की कि वे अेक बार पुस्तकको देख जायँ, अुस पर अपनी राय दें और यदि वह छपाने लायक मालूम हो, तो अुसके लिअे प्रस्तावना भी लिख दें। डॉ० महेताने मेरी प्रार्थना मंजूर की। निबन्ध अुन्हें पसन्द आया। और जब अुन्होंने अिसे छपवानेकी सलाह दी तो मुझे भी अिसे प्रकाशित करवानेकी हिम्मत हुअी।

बम्बअी, १०–७–'२९ — मथुरादास त्रिकमजी

परिचय

कहा जा सकता है कि गुजराती भाषामें वैज्ञानिक विषयों पर अिनी-गिनी किताबें ही हैं। स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों पर अंग्रेजीमें और युरोपकी दूसरी भाषाओंमें आम जनताके लिअे जैसी सुन्दर पुस्तकें निकली हैं, वैसी पुस्तकें भी हमारे यहाँ कम ही हैं। आजसे ठीक दस साल पहले, जब बीमारीके कारण मुझे अपना बहुतेरा वक्त आराममें बिताना पड़ा था, गांधीजीने मुझे सुझाया था कि मैं जनताके लिअे अिस तरहकी जानकारी देनेवाली कुछ पुस्तिकाअें तैयार करूँ। गांधीजीको यह देखकर बड़ा रंज होता था कि हमारे देशमें लोग जहाँ-तहाँ थूकते हैं, जो चाहे खाते हैं, अपने घरका कूड़ा-करकट बाहर निकाल कर दूसरोंके आँगनमें डाल देते हैं, गाँवके बीचोंबीच घूरे वगैरा रखते हैं। हमारी ये निजी और सामाजिक गन्दी आदतें अुन्हें बहुत अखरती थीं। वे चाहते थे कि मैं लोगोंके लिअे कुछ अैसा साहित्य लिखूँ, जिससे अुन्हें जीवनमें नियमितता, खुली हवा, कसरत वगैराके फ़ायदोंका पता चले और अुन्हें अच्छी रहन-सहनके कायदे मालूम हों। लेकिन कअी कारणोंसे, और खासकर गुजराती भाषामें आसानीसे न लिख सकनेकी अपनी कमजोरीके कारण, मैं अिस कामको हाथमें न ले सका। अिस पुस्तकके लेखक भाअी मथुरादासजीको धन्यवाद है कि अुन्होंने मेरी तरह बीमार पड़ने पर अपने अनिवार्य आरामका अुपयोग अेक अैसी अुत्तम पुस्तकके लिखनेमें किया, जो गुजराती जनताका क्षयरोगका अच्छा परिचय करानेवाली है और आरोग्यके नियमोंकी जानकारीसे भरी है।

यह देशका बड़ा दुर्दैव है कि पिछले ४० सालोंमें हिन्दुस्तानके सभी हिस्सोंमें क्षयका बहुत ही फैलाव हुआ है। काठियावाड़ जैसे प्रांतके छोटे-छोटे गाँवोंमें भी, जो पहले अपनी अच्छी आबोहवाके लिअे मशहूर

थे और जहाँ बड़े शहरोंके लोग हवा बदलने जाया करते थे, आज क्षयका बड़ा ज़ोर है। जिस तेज़ीसे यह बीमारी देशमें फैल रही है, अुसके अनेक कारण हैं। खास कारणोंमें अेक कारण हमारी दिन-ब-दिन चढ़नेवाली ग़रीबी है। गाँवोंसे हर साल अितना अनाज बाहर चला जाता है कि गाँववालोंके लिअे खानेको काफी नहीं रहता। अिधर देशमें अेकके बाद अेक अितने अकाल पड़े हैं कि अुनकी वजहसे ढोरोंकी हालत बेहद खराब हो गअी है — दूध, दही और घी, जो पहले सस्ते, अच्छे और काफी मिक्दारमें मिलते थे, ग़रीबोंके लिअे भी सुलभ थे, आज सिर्फ अमीरोंकी पहुँचकी चीज़ बन गये हैं। अिस तरह पर्याप्त पौष्टिक खुराकके अभावमें आज क्षयसे लड़नेकी लोगोंकी ताक़त कम हो गअी है।

हमारे देशवासियोंकी कअी गन्दी आदतोंके कारण भी देशमें क्षयका जोर बढ़ रहा है; जैसे, हमारे यहाँ लोगोंमें जहाँ-तहाँ थूकनेकी आदत है। क्षयके बीमारके बलग़ममें क्षयके हजारों कीटाणु होते हैं। जब यह बलग़म सूख जाता है, तो अिसके रजकण धूलमें मिलकर हवाके साथ अुड़ते हैं, और वह हवा आस-पासके रहनेवालोंकी साँसके जरिये अुनके फेफड़ोंमें पहुँचती है। क्षयके कीटाणुओंवाले ये रजकण फेफड़ेमें रह जाते हैं और बीमारी पैदा करते हैं। क्षयके बीमारके आसपास रहनेवाले लोगोंमें, जिनकी तन्दुरुस्ती खास तौर पर कमज़ोर होती है, वे जल्दी ही अिस रोगके शिकार हो जाते हैं। जब कोअी आदमी क्षयरोगसे बीमार पड़ता है, तो अुसके परिवारमें या नज़दीकके सगे-सम्बन्धियोंमें भी कभी-कभी यह रोग कुछ लोगोंको सताता है। अिसकी खास वजह यह है कि क्षयके बीमारके बलगमका काफी बन्दोबस्त नहीं हो पाता। धनवानोंको पौष्टिक खुराककी कोअी कमी नहीं रहती, फिर भी अनेक धनी परिवारोंमें क्षयके बीमार पाये जाते हैं। अिसका अेक कारण यह हो सकता है कि अुनके नौकरोंमें से किसीको यह रोग हुआ हो और अुसकी जहाँ-तहाँ थूकनेकी आदतके कारण दूसरोंको अुसके रोगकी छूत लग

गअी हो । दूसरे, अमीरोंकी रहन-सहन अक्सर अनियमित होती है, जिसकी वजहसे वे अिस रोगके शिकार हो जाते हैं । मसलन्, अुनमें शराब वगैरा पीनेकी लतें होती हैं और अिन्द्रियोंकी लगाम भी ढीली रहती है । अतः क्षयके बीमारके बलगमका जितना बन्दोबस्त किया जायगा, अुतना ही यह रोग फैलनेसे रुकेगा । अिसलिअे अिस रोगके रोगीको और अुसके रिश्तेदारोंको यह जान लेना चाहिये कि बलगमको ठिकाने कैसे लगाया जाय । भाअी मथुरादासजीने अिस बारेमें अिस पुस्तकके अन्दर कअी अुपयोगी सुझाव पेश किये हैं, जो हर आदमीके लिअे जानने लायक हैं । यहाँ यह लिख देना जरूरी मालूम होता है कि यों तो क्षयरोगके कीटाणु बहुतेरे लोगोंके अन्दर घुस जाते हैं, लेकिन जहाँ तन्दुरुस्तीका ठीक-ठीक खयाल रखा जाता है और वक्तसर आराम कर लिया जाता है, वहाँ बहुतोंको यह रोग नहीं सताता । लेकिन जहाँ स्वास्थ्यका पूरा खयाल नहीं रखा जाता, वहाँ अिस रोगके लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।

पश्चिमी देशोंमें लोग क्षयरोगके बारेमें काफी जानने लगे हैं । नतीजा अिसका यह हुआ है कि वहाँ अिस रोगकी शिकायत दिन-ब-दिन कम होती जा रही है । अुधरके मुल्कोंमें अिस बीमारीका मुकाबला करनेके लिअे जगह-जगह सेनेटोरियम बने हैं । बड़े-बड़े शहरोंमें क्षयको मिटानेवाले मण्डल — अेण्टी टथुबरक्युलोसिस लीग्ज — क़ायम हुअे हैं । ये मण्डल बहुत अच्छा काम करते हैं । ये अिस रोगके सम्बन्धकी जानकारी देनेवाली पत्रिकाअें छपाकर अुनका प्रचार करते हैं । अगर क्षयका कोअी बीमार गरीब हुआ, तो ये न सिर्फ मुफ्तमें या कम खर्चमें अुसका अिलाज ही करवा देते हैं, बल्कि अगर सारे परिवारमें वही अेक कमानेवाला हुआ, तो अुसके कुटुम्बियोंकी आर्थिक सहायता भी करते हैं । अिस खयालसे कि अेक बार अच्छा होनेके बाद बीमार फिर रोगका शिकार न हो, ये मण्डल अुसे अुसके लायक कोअी न कोअी धन्धा सिखा देते हैं और अुसके लिअे आमदनीका भी कोअी ज़रिया पैदा कर देते हैं । अगर

हमारे देशमें भी अैसी संस्थाअें क़ायम हों और वे अिसी ढंग पर काम करें, तो यहाँ भी यह बीमारी जड़से खतम हो सकती है ।

अिस बीमारीका अिलाज जितना ही जल्दी होता है, अिसकी सार-सँभालमें अुतनी ही आसानी होती है । अिस रोगको पहचाननेके तरीक़े दिन-ब-दिन आसान बनते जा रहे हैं । आम तौर पर क्षयका नाम सुनते ही बीमारका और अुसके रिश्तेदारोंका दिल दहल अुठता है । लेकिन सच तो यह है कि अगर शुरूसे मरीज़की ठीक-ठीक सार-सँभाल की जाय, तो यह बीमारी असाध्य नहीं रहती । मगर जब लापरवाहीकी वजहसे या दूसरे कारणोंसे रोगीकी सेवा-शुश्रूषा ठीक-ठीक नहीं हो पाती, तो रोग जड़ जमा बैठता है और फिर अुसके पंजेसे छूटना मुश्किल हो जाता है । यह मर्ज़ अितना खतरनाक सिर्फ अिसीलिअे माना गया है कि हम समय रहते अिसका अिलाज नहीं करते । अिसके घातक होनेका यह अेक बड़ा कारण है । अिस रोगका अिलाज करनेमें जितनी जल्दी की जायगी, अुतनी ही अिसकी भयंकरता भी घटेगी । अिस पुस्तकमें भाअी मथुरादासजीने अिस बीमारीके आरम्भिक लक्षणोंका ज़िक्र करके कअी अुपयोगी सूचनाअें दी हैं, जो आम जनताके लिअे अवश्य ही अुपयोगी साबित होंगी । अगर अिन सूचनाओं पर अमल किया गया, तो अिस रोगके अनेक रोगियोंको स्वस्थ बनाना आसान हो जायगा ।

अिस पुस्तकमें लेखकने यह बताया है कि रोगके लक्षण प्रकट होनेके बाद रोगीको क्या-क्या करना चाहिये और कैसी खबरदारी रखनी चाहिये । लेखकने यह भी कहा है कि शारीरिक श्रमकी तरह मानसिक श्रमसे भी रोगीको कष्ट होता है । आम तौर पर लोगोंको मानसिक श्रमसे होनेवाले नुकसानका बहुत कम खयाल रहता है ।

अिसके सिवा, पुस्तकमें यह भी बताया है कि आज नयेसे नये तरीक़ोंसे अिस बीमारीका अिलाज करनेवाले सेनेटोरियम कहाँ-कहाँ हैं । पुस्तकमें अिनके सम्बन्धमें जो जानकारी दी गअी है, वह भी रोगियोंके लिअे बहुत अुपयोगी साबित होगी ।

भाअी मथुरादासजीने अिस पुस्तकके लिखनेमें बहुत ही मेहनत की है। अुन्होंने अिस बीमारीकी चर्चा करनेवाली पुस्तकोंका अध्ययन तो किया ही है, लेकिन अिसके सिवा, क्षयरोगके रोगियों और डॉक्टरोंसे भी अुन्होंने अिस विषयकी बहुतेरी अुपयोगी जानकारी प्राप्त की है। अिस सारी सामग्रीके अलावा अपने निजी अनुभवका बड़े अच्छे ढंगसे अुपयोग करके चार सालकी अनिवार्य विश्रान्तिके फल-स्वरूप अिस पुस्तकको तैयार कर अुन्होंने गुजरातकी जो सेवा की है, अुसके लिअे गुजरातको अुनका आभार मानना चाहिये।

बम्बअी, जीवराज नारायण महेता

४-५-१९३०

सूची

मरुकुंज

१

अुद्देश्य

प्रकृतिका नियम तो यह मालूम होता है कि मनुष्य अपने जीवनका आरम्भ नीरोग दशामें करे। पैदा होते ही तन्दुरुस्तीका खयाल रखनेकी जिम्मेदारी मनुष्यके सिर आ पड़ती है। अिस काममें मनुष्य जिस हद तक असफल रहता है, अुसी हद तक वह बीमारीका शिकार बनता है। दूसरे शब्दोंमें, सब तरहके रोगोंकी पूरी-पूरी रुकावटसे ही तन्दुरुस्तीकी हिफाजत होती है। लेकिन अनगिनत आदमी अैसे हैं, जो कअी तरहकी अपनी और पराअी मजबूरियोंके कारण अिस आदर्श स्थितिसे वञ्चित रह जाते हैं।

शरीरमें जो अनेक रोग बार-बार पैदा होते हैं, अुनमें राजरोग या क्षयरोग सबसे निराला है। यह रोग बहुत पुराने जमानेसे दुनियाकी सभ्य जनताके पीछे पड़ा है और आज भी अिसका बड़ा जोर है।

राजरोग मनुष्यके तन, मन और धनका शोषण करनेवाला और अेक लम्बे अर्से तक दिलमें आशा-निराशाकी लहरें पैदा कर आदमीको थकानेवाला रोग साबित हुआ है। अिसका नाम सुनते ही लोगोंकी आँखोंके सामने अँधेरा छा जाता है।

लेकिन दरअसल हालत मृगजलकी तरह अेकदम निराशाजनक नहीं है। आयुर्वेद या वैद्यकमें अैसा कोअी रामबाण व चिन्तामणि अुपाय नहीं है, जो अिस रोगको मिटा सके। फिर भी अिसका रोगी हमेशा अभागा ही नहीं माना गया है, न यह रोग सदा सबके लिअे जमदूत ही साबित हुआ है। कुछ खास हालतोंमें अिस विचित्र व्याधिकी ज्वालासे छूटकर फिरसे जिन्दगीकी नअी रोशनी देखनेका मौका मिलता

1316

है । कअी आदमी अिस बीमारी पर विजय पाकर फिर दुनियामें अपना काम-धन्धा करते नज़र आते हैं ।

क्षयके अिलाजमें दवाका अुपयोग बहुत ही कम, नाम-मात्रको ही, होता है; असल चीज 'आहार-विहार' की योजना है । बीमारको अपने लिअे अेक नअी और हितकारी दिनचर्या बना लेनी पड़ती है । बीमारीसे छुटकारा पानेके लिअे स्वावलम्बनकी जितनी जरूरत अिस रोगमें है, अुतनी दूसरे किसी रोगमें शायद ही हो ।

चूँकि अिस बीमारीमें अिलाजकी सफलताका सारा दारोमदार रोगीकी मनोवृत्ति और प्रवृत्ति पर रहता है, अिसलिअे रोगीको रोगके स्वरूपसे अनजान रखनेमें अुसका नुकसान ही है । जब क्षयके सम्बन्धमें कोअी शंका न रह जाय और रोगका ठीकसे निदान हो जाय, तो रोगीको बड़ी सावधानीके साथ अिसकी सूचना दे देनी चाहिये । चूँकि कुछ हालतोंमें अिस रोगका सफल अिलाज हो सकता है, अिसलिअे रोगीको रोगके स्वरूपका ज्ञान कराते समय वास्तविक सान्त्वना भी दी जा सकती है; और अगर कभी रोगके समाचारसे अुसे आघात भी पहुँचता है, तो वह बहुत-कुछ क्षणिक ही होता है । जीवनमें जबरदस्त सदमा पहुँचाने-वाली कअी घटनाअें घट जाती हैं; कुछ समयके लिअे वे मनको मथ डालती हैं और फिर याददास्तका अेक विषय बनकर मनके किसी कोनेमें चुपचाप पड़ी रहती हैं । चोट हमेशा ताजी नहीं रहती । जो रोगी अपनी सच्ची हालतको जानकर अुसे सह नहीं सकता, अुसे अँधेरेमें रख-कर भी क्षयसे बचा लेना मुमकिन नहीं होता । यह बहुत ज़रूरी है कि रोगीको अपने रोगका भान हो और अुससे बचनेके तरीकोंका ठीक ज्ञान हो । बिना अिसके रोगीके जीवन-प्रवाहमें आअी हुअी रुकावट दूर नहीं होती ।

अिस बारेमें फाअुलरकी बात ध्यानमें रखने लायक है :

" मूर्ख (आदमी) फेफड़ोंके क्षयसे कभी भी मुक्त नहीं होता । साहित्य, विज्ञान या कलाके बारेमें वह भले ही मूर्ख न हो, अुसके

रोगकी विकृति कैसी भी अवस्थामें क्यों न हो, अथवा रोगके सभी लक्षण चाहे जैसे क्यों न हों, अगर वह अपना हित नहीं समझता है, तो अुसका नाश निश्चित है। लेकिन अगर रोगी यह जान ले कि अुसका सारा भविष्य संकटमें है और फिरसे नीरोग होनेके लिअे वह हर तरहका त्याग करे, तो तन्दुरुस्त होनेकी संभावना न रहते हुअे भी, अुसके लिअे आशा रहती है।"

२

चेतनरज और क्षय

जब सूरजकी किरणें किसी छोटे छेदकी राह घरमें आती हैं, तो कभी-कभी अुनके अुजेलेमें अनगिनत रजकण अुडते नजर आते हैं। ये रजकण सिर्फ अुसी जगह नहीं होते, बल्कि सारा वातावरण अिनसे भरा रहता है। चूँकि ये बहुत ही सूक्ष्म होते हैं, अिसलिअे आम तौर पर दिखाअी नहीं पडते और न स्पर्श द्वारा ही जाने जाते हैं। ये रजकण जड अर्थात् निर्जीव होते हैं। अैसे और अिनसे भी बहुत ही सूक्ष्म — अितने सूक्ष्म कि बिना खुर्दबीन या सूक्ष्मदर्शक यंत्रके खाली आँखों नजर न आनेवाले — भिन्न-भिन्न प्रकारके अनगिनत सजीव चेतनरज सृष्टिमें मौजूद हैं। अंग्रेजीमें ये 'बैक्टेरिया' कहलाते हैं। ये जमीन, हवा और पानीमें हर जगह कम या ज्यादा तादादमें फैले रहते हैं, ये आदमीके शरीर पर और अुसके शरीरके अंदर भी पाये जाते हैं। सृष्टिकी विविध वस्तुओंकी अुत्पत्ति, स्थिति और लयके लिअे ये जरूरी हैं। अिनके बिना सृष्टिका बहुतेरा व्यवहार रुक सकता है। दूधका दही बनानेमें भी ये सूक्ष्म चेतनरज निमित्त बनते हैं।

चेतनरजके कअी प्रकार अैसे हैं, जो सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी मददसे पहचाने गये हैं। अुनमें कुछ ही का सम्बन्ध मनुष्यकी देहमें पैदा होनेवाले

रोगोंके साथ पाया जाता है । जिस रजसे रोग पैदा होते हैं, वह अितनी प्रबल नहीं होती कि हमेशा सब शरीरोंमें रोग पैदा कर सके ।

जिस राज्यका प्रबंध अच्छा होता है, अुसमें राज्यके अधिकारियोंकी जानकारीके बिना बाहरका कोअी व्यक्ति आ ही नहीं सकता । अगर कोअी आ भी घुसे, तो अुसे अपने कब्जेमें रखनेका पूरा बन्दोबस्त वहाँ रहता ही है; और अगर कोअी लुक-छिपकर रह भी जाय, तो वह राज्यके तेजसे अितना चौंधिया जाता है कि कोअी गडबड नहीं मचाता और अपने आप अपनी कमजोरी जान जाता है । मनुष्यके शरीरकी रचना भी अैसी ही है । शरीर किसी भी तरहके विजातीय द्रव्यको अेक क्षणके लिअे भी बरदाश्त नहीं करता । अेक छोटा-सा काँटा या कंकर भी कहीं चुभ जाता है, तो वह खटकता रहता है और अुसे बाहर निकालनेकी कोशिश फौरन शुरू हो जाती है । चेतनरजके लिअे भी यही नियम लागू होता है । साँसके साथ जानेवाली हवामें मिलकर अगर कोअी रजकण नाककी राह सीधा शरीरमें चला जाता है, अथवा अन्न या जलके साथ या और किसी तरीकेसे अन्दर घुस जाता है, तो शरीरका रक्त और रस अुसे नष्ट कर डालते हैं । ये चेतनरज हर रोज़ मनुष्यके शरीरमें घुसते हैं और रोज शरीरके अंदर अिनका संहार होता रहता है, हालाँकि मनुष्यको अिसका कोअी पता नहीं चलता । रात-दिन चलनेवाले अिस संहारके सपाटेमें यदि कोअी चेतनरज आनेसे बच जाता है, तो वह शरीरके अंदर बिलकुल निर्बल बनकर पड़ा रहता है । टाअिफॉअिड, मेनिनजाअिटिस, डिप्थेरिया, न्यूमोनिया जैसी खतरनाक बीमारियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले चेतनरज या कीटाणु कअियोंके शरीरमें पाये जाते हैं; फिर भी वे तन्दुरुस्त और रोगसे बिलकुल अलिप्त पाये गये हैं ।

जब तक शरीरकी जीवनी-शक्ति (vitality) अतिशयता, श्रम, सर्दी, सील, अुपवास, भूख, अनुचित खान-पान, जख्म, चोट और वातावरणमें होनेवाले आकस्मिक हेर-फेर वगैराके कारणसे घटती या कमजोर नहीं पडती, तब तक शरीरके अन्दर रोगोत्पादक कीटाणु न तो प्रबल हो

सकते हैं, न शरीरमें अपना विस्तार बढ़ा सकते हैं और न शरीरको रोगयुक्त बना सकते हैं। "यह तय है कि क़रीब-क़रीब हर तरह के चेतनरजसे — क्षयके रजसे भी — अलिप्त रहनेकी शक्ति मनुष्यके अंदर काफ़ी मात्रामें पाअी जाती है" (रोज और कार्लेस)। अगर यह अनोखी व्यवस्था न होती, तो चेतनरजकी संख्या और अुसकी अुत्पादक शक्ति अितनी ज्यादा है कि अब तक मानव-जातिका नाश कभीसे हो चुका होता।

जब कभी किसी न किसी कारणसे मनुष्यकी जीवनी-शक्ति कमजोर हो जाती है और किसी खतरनाक रोगको पैदा करनेवाला कोअी रज शरीरमें घुसकर बढ़ने लगता है, तब वहाँ अुसका जोर बढ़ता है और वह बीमारी पैदा करता है। आम तौर पर बीमारी पैदा होनेका यही क्रम है, लेकिन यह क्षय-रजको लागू नहीं होता। क्षयके कीटाणु दूसरे रोग-जनक कीटाणुओंके मुकाबले अेक तरहसे कमजोर होते हैं। अुनकी वंशवृद्धि धीमी होती है और वह लगातार नहीं होती। जब वे शरीरके तंतु तक पहुँचते हैं, तो अुनके और तंतुओंके बीच जोरकी लड़ाअी ठन जाती है। अगर अिस लड़ाअीमें रोगके कीटाणुओंका नाश नहीं होता, तो अुनके अिर्द-गिर्द कुछ गाँठें या ग्रन्थियाँ (tubercles=ट्यूबर्कल्स) बन जाती हैं। अैसी अनेक ग्रंथियाँ बनती हैं। वे शरीर पर होनेवाली फुंसियोंके समान होती हैं और अुनका विकास भी फुंसियोंके जैसा होता है। लेकिन अिन ग्रन्थियोंका विपाक बहुत ही धीमा होता है, अिनके पकने और नरम पड़नेमें बहुत समय लगता है, बरसोंका समय भी लग जाता है। कअियोंके शरीरमें अिनके पकने या नरम पड़नेका मौका सारी जिन्दगीमें कभी आता ही नहीं; फलतः न अिनका जहर शरीरके अन्दर फैल पाता है, और न आदमी क्षयरोगमें बीमार पड़ता है। बहुतोंके शरीरमें क्षयकी ग्रंथियाँ तो होती हैं, लेकिन अुनका थोड़ा भी प्रभाव अुनके जीवन पर पड़ता नजर नहीं आता।

क्षय-ग्रंथियाँ शरीरके अनेक हिस्सोंमें पैदा होती हैं, लेकिन खास

तौर पर वे फेफड़ोंमें बनती हैं, अिसलिअे क्षयकी चर्चासे विशेषकर फेफड़ोंका क्षय ही सूचित होता है।

देरीसे हो या जल्दी, क्षय-रज जमते तो प्रायः सभीके शरीरमें हैं, और क्षय-ग्रंथियाँ भी बन जाती हैं; फिर भी सबके सब क्षयसे बीमार नहीं होते। क्षय-रजकी छूत बहुतोंको लगती है, लेकिन क्षय 'रोग' बहुत थोड़ोंको होता है। जहाँ 'छूत' है, वहाँ 'रोग' है सो बात नहीं; 'छूत' और 'रोग' पर्यायवाची नहीं हैं — ये दो बिलकुल अलग चीज़ें हैं। विंगफिल्ड लिखता है: "ध्यान रहे कि क्षयकी छूत सर्वव्यापक है" और "किसीको क्षय-रजकी छूत लगनेका यह मतलब तो हरगिज नहीं होता कि वह आदमी अुसी समय क्षयसे पीड़ित भी हो।"

क्षयरोगके सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ ट्रुडोका प्रयोग अिस सम्बन्धमें बड़ा अर्थसूचक है। अुसने कुछ तन्दुरुस्त खरगोश अिकट्ठा किये और हरअेक खरगोशमें अेक ही किस्मकी क्षय-रज बराबर-बराबर तादादमें दाखिल करनेके बाद अुनमें से कुछको सीलवाली, अँधेरी और हवा व अुजेलेसे रहित जगहमें बन्द किया; और दूसरे कुछ खरगोशोंको खुली, अुजेलेवाली, हवादार और बिना सीलवाली जगहमे छोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि पहली टुकड़ीवाले खरगोश क्षयसे बीमार पडे और सभी झटपट मर गये; दूसरी टुकड़ीवालोंमें से कुछको तो कुछ भी नहीं हुआ और कुछ पर रोगका असर नाममात्रका दिखाअी पड़ा। अिस तरह अुसने यह साबित कर दिया कि क्षय 'रोग' के अुत्पन्न होनेमें प्रतिकूल परिस्थितिका ही हाथ ज्यादा होता है। अब हम यह सोचेंगे कि किस तरहकी प्रतिकूल परिस्थितिसे मनुष्य-जातिमें क्षयरोग पैदा होता है।

३

क्षयके अुत्पादक कारण

पिछले परिच्छेदमें हम यह देख चुके हैं कि क्षयरोगसे सम्बन्ध रखनेवाले चेतनरजके कारण बहुतोंके शरीरमें आगे-पीछे क्षय-ग्रंथियोंका निर्माण होता है, यानी बहुतोको क्षयकी छूत लगती है, लेकिन वे सब क्षयकी 'बीमारी' के शिकार नहीं होते। क्षयकी 'छूत' और क्षयकी 'बीमारी' ये दो बिलकुल अलग परिस्थितिके सूचक शब्द हैं। कोअ कहता है कि क्षयकी 'छूत' तो आदमीकी तकदीरमें लिखी ही है, अुसकी चिन्ता करनेकी शायद ही कोअी जरूरत हो।

किसीके शरीरमें क्षयके कीटाणु कब घुसते या पैदा होते हैं, यह सब कैसे होता है, ग्रंथियाँ कब बनती हैं, वगैरा सवालोका जवाब देना लगभग असम्भव है। ये सारी क्रियाअें अनजाने हुआ करती हैं — अिन्सानको अिनका पता नहीं चलता। अलग-अलग देशोंमें बरसोंसे अिस बातकी कोशिश चल रही है कि लोगोको क्षयकी 'छूत' भी न लगे, लेकिन जैसा कि फिशबर्ग कहता है, यह हलचल बिलकुल असफल साबित हुअी है। अिसलिअे अब छूतको रोकनेके बजाय रोगको पैदा होनेसे रोकनेकी ओर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। मनुष्यके शरीरमें अनेक तरहकी क्रियाअें पल-पलमें होती रहती हैं, लेकिन मनुष्य अुनकी चिन्ता शायद ही कभी करता है। अिनमें से कअी क्रियाओंका तो अुसे खयाल तक नहीं रहता। मनुष्यकी अेकमात्र अिच्छा यही रहती है कि अुसके शरीरमें कोअी बीमारी पैदा न हो।

क्षयरजकी छूत लगनेका मतलब होता है, शरीरके अन्दर क्षय-ग्रंथियोका अुत्पन्न होना; लेकिन ग्रंथियोंके रहते हुअे भी रोग पैदा नहीं होता। जब ये गाँठें नरम पड़ती हैं और अिनके अन्दरका जहर शरीरमें

फैलता है, तभी क्षयरोग पैदा होने लगता है। गाँठोंके नरम होनेका मतलब है, रोगका जन्म होना। दूसरे शब्दोंमें, जिन कारणोंसे ये गाँठें नरम पड़ती हैं, अुन्हीं कारणोंसे रोग पैदा होता है और अुन कारणोंको दूर करना ही क्षयरोगका सच्चा निवारण है।

क्षयकी अुत्पत्तिके छोटे-मोटे अनेक कारण हैं; लेकिन अुन सबका समावेश दो शब्दोंमें किया जा सकता है: 'प्रतिकूल परिस्थिति'। यहाँ अिस विषयका विचार करनेसे पहले अिस बीमारीके बारेमें जो धारणाअें परंपरासे चली आअी हैं, अुनका विचार कर लेना ठीक होगा।

अभी तक कोअी बालक जन्मसे ही क्षयी नहीं पाया गया। अनुभवियोंका यह खयाल भी नहीं है कि जीवनके पहले सालमें शरीरके अंदर क्षय-ग्रंथियाँ बनती हों। जैसे-जैसे अुम्र बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ग्रंथियोंके बननेकी संभावना भी बढ़ती जाती है। ये ग्रंथियाँ क्षयरोगीकी सन्तानमें औरोंके मुकाबले जल्दी बनती हैं या नहीं, अिसके बारेमें निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है। हाँ, यह अच्छी तरह देखा गया है कि जब क्षयरोगवाले परिवारमें किसी व्यक्तिको और क्षयरोगसे अछूते परिवारके किसी व्यक्तिको क्षय होता है, तो अुन दोनोंके फिरसे तन्दुरुस्त होने न होनेकी संभावना करीब-करीब अेक-सी ही रहती है; व्यक्तिके पुरखोंका अितिहास अुसमें बहुत ही कम दखल देता है। जो बच्चे क्षयके रोगियोंकी औलाद हैं, अथवा जिन बच्चोंके क्षयसे पीड़ित होनेका अंदेशा है, फ्रान्समें अुनके लिअे देहाती जीवनका प्रबन्ध किया जाता है। नतीजा अिसका यह हुआ है कि अिस तरह देहातमें रखे गये २,३०० बालकोंमें से सिर्फ़ ७ क्षयके शिकार बने। अिसलिअे यह मान लेने पर भी कि लोगोंकी परम्परागत धारणामें थोड़ी-बहुत भी सचाअी है, अिसमें सन्देह नहीं कि यदि आरम्भसे ही बालकको नीरोग रखनेकी पूरी सावधानी बरती जाय और अुचित अुपायोंसे काम लिया जाय, तो क्षय-रोगियोंकी सन्तान क्षयसे बचाअी जा सकती है। यह तो स्पष्ट है कि अिस संबंधमें गुरुत्वाकर्षणके नियमकी तरह, अथवा आमका आम ही पैदा

होता है अिस नियमकी तरह, कोअी निरपवाद नियम प्रचलित नहीं है। क्षयरोगीकी सन्तानको क्षय होना ही चाहिये, अथवा अुसे क्षय होनेकी विशेष संभावना है, अिस विचारको मनमें स्थान देना भी अेक तरहकी अतिशयता है। मनुष्यके स्थूल और सूक्ष्म तत्त्वोंमें से कितने और कौन-कौनसे तत्त्व, किस परिमाणमें और किस तरह, बीज द्वारा अुत्पन्न होनेवाली संतानमें प्रकट होते हैं, अिस सम्बन्धका हमारा ज्ञान अभी अधूरा है। जो तत्त्व परम्परागत प्रतीत होते हैं, व्यक्तिके जीवनमें वे भी बदले हुअे नजर आते हैं। रोगके परपरागत होने-न-होनेका विचार करके अन्तमें फाअुलर लिखता है "फेफडोंका क्षय अुत्पन्न होनेमें परपरा या विरासतका हाथ कहाँ तक है, अिस पर न्यायपूर्वक कुछ कहनेका यत्न करना निरर्थक ही है।"

अब हम परिस्थितिका विचार करेंगे।

परिस्थितिका विचार करनेका मतलब है, मनुष्यके समूचे जीवनका अवलोकन करना। सरल और नीरोग जीवन वितानेके लिअे मनुष्यको कुछ संयोगोंकी आवश्यकता रहती है, जिनके अभावमें अुसे कअी तरहके विघ्नोंका सामना करना पडता है। रहनेके लिअे अच्छा अुपजाअू प्रदेश और आरामके लिअे घरकी जरूरत है; गरमी, सरदी और वर्षासे शरीरकी रक्षाके लिअे कपडे आवश्यक हैं; शरीरके पोषण और निर्वाहके लिअे अन्न, जल और अुपयोगी प्रवृत्तियाँ जरूरी हैं; फिर मनकी प्रसन्नता, बेफिक्री, मनोनुकूल घर-गृहस्थी व अनुकूल सामाजिक जीवनकी भी मनुष्यको जरूरत रहती है। और अिनमें से बहुत-कुछ प्राप्त करनेके लिअे अुसको पर्याप्त साधन-सम्पत्तिकी भी आवश्यकता होती है। जहाँ साधन-सामग्रीकी कमी है और गरीबी है, वहाँ अिनमें से अनेक चीजोंका कमोबेश अभाव रहता है और अिस सबका थोडा-बहुत असर शरीरके गठन पर भी पडता ही है, शरीरकी जीवनी-शक्तिका ह्रास होता है और फलत: क्षयरोग जैसे रोगोंके पैदा होनेकी नौबत आती है। गरीबीके कारण मनुष्यको कअी तरहकी प्रतिकूल परिस्थितिमें रहना पडता है,

वह साफ हवा, पौष्टिक आहार और हवा-अुजेलेवाले घर वगैराकी तंगीका अनुभव करता है; सामाजिक जीवनकी रचनाके कारण जब अुसे खुलेमें रहनेको नहीं मिलता, तो विवश होकर घनी बस्तीके बीच रहना और तंग जगहमें काम करना पड़ता है। चूँकि मनुष्य भावनाप्रधान और बुद्धिमान है, अिसलिअे अुसे सकारण भी और अकारण भी कभी तरहके हलके-भारी आघात सहन करने और चिन्तामें डूबनेके अवसर प्राप्त होते रहते हैं। अिन्हीं सब कारणोंसे अुसके जीवनमें अकसर भले-बुरे प्रकारकी अतिशयताको स्थान मिलता रहता है। यह परिस्थिति मनुष्यमें क्षयरोगको जगानेके कारण पैदा कर देती है।

क्षयरोगके पैदा होनेमें जो बातें अकसर निमित्तरूप बनती हैं, अुनमेंसे कुछ ये हैं: छाती या सीनेकी सदोष रचना; स्त्रियोंका बार-बार गर्भधारण करना और बच्चोंको जन्म देना; तन्दुरुस्तीको नुकसान पहुँचानेवाले रोजगार-धन्धे; शराबखोरी; कुकुर खाँसी जैसी खाँसी और चेचक जैसे रोग, अिन्फ्लुअेन्जा और न्यूमोनिया जैसे सरदीके रोग; कड़ी या खतरनाक चोटें; अति श्रम, अति चिन्ता, शरीर और मनका शक्तिसे परे और असाधारण ह्रास; जीवनके लिअे जरूरी चीजोंका क़ायमी अभाव। "क्षयकी अुत्पत्तिके प्रधान तत्त्वोंमें लोगोंकी आदतें, आर्थिक स्थिति और रहने व खानेका प्रबन्ध मुख्य है। ये सारे तत्त्व अेक-दूसरेसे अितने अुलझे और गुँथे हुअे हैं कि अिनमें से हरअेकका महत्त्व अलग-अलग आँकना कठिन है, — अिस सम्बन्धमें सिर्फ अितना ही कहा जा सकता है कि गरीबीके बदले खुशहाली बढ़े, युद्धकी जगह शान्ति स्थापित हो और शराबखोरी रुके, तो क्षयसे होनेवाली मृत्यु-संख्यामें स्पष्ट ही कमी देखी जा सकती है" (बाल्डविन)। यह भी साफ है कि अूपर जिन कारणोंकी चर्चा की गअी है, अुनमें से कितने किस प्रमाणमें खड़े हों तो क्षय पैदा हो, अिसका गणितके नियमकी तरह कोअी खास नियम नहीं हो सकता। अिनमें से किस कारणका मनुष्य पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, अिसका सारा दारोमदार अुसकी जीवनी-शक्ति पर है। सबकी जीवनी-

शक्ति अेक-सी नहीं होती; अुसका कोअी माप भी नहीं निकाला जा सकता। अिस सम्बन्धमें अितना ही कहा जा सकता है कि जब शरीर और मनकी अतिशय अशान्तिके कारण शक्तिका पलडा बराबर अूँचा और प्रतिकूल परिस्थितिका नीचा रहने लगता है, तब अिस रोगके प्रकट होनेकी सभावना बहुत-कुछ बढ जाती है।

४

क्षयके प्रकार

पिछले दो परिच्छेदोंमें हम यह देख चुके हैं कि जब क्षय-रज शरीरमें प्रवेश करता है, तभी वहाँ क्षय-ग्रंथियाँ बनती हैं। लेकिन क्षय-ग्रंथियोंके बनने मात्रसे क्षयरोग पैदा नहीं होता। अधिकांश मनुष्योंकी देहमें ये ग्रंथियाँ पाअी जाती हैं, लेकिन अिनका अुनपर जीवनभर कोअी प्रभाव नहीं पड़ता। प्रतिकूल परिस्थितियोंके कारण जब शरीरकी जीवनी-शक्ति कम होती है, तो ये ग्रंथियाँ नरम पड जाती हैं और अिनमें से निकलनेवाला विष शरीरमें फैलने लगता है। अिसका प्रभाव शरीरकी गठन पर कअी तरहसे पडने लगता है और तभी क्षयरोग पैदा होता है।

क्षयके दो प्रकार हैं: अुग्र (acute=अेक्यूट) और मन्द (chronic=क्रॉनिक)। अुग्र रूप कभी-कभी पाया जाता है। वह अितना भीषण होता है कि अुससे बचनेकी बहुत कम आशा रह जाती है। जब गिद्ध अपने शिकार पर अचानक झपटता है, तो अक्सर अुस शिकारको साँस लेनेका भी मौका नहीं मिलता — बेचारा चटपट खतम हो जाता है। अुग्र क्षयकी यही तासीर है। जब वह प्रकट होता है, तो अुससे पैदा होनेवाली सभी क्रियाअें विनाशक होती हैं। आम तौर पर रोगके कारण शक्तिका जितना ह्रास होता है, अुतनी ही नअी शक्ति भी आती रहती है — तोड़-फोडके साथ अन्दर मरम्मत भी होती रहती

है । क्षयके अुग्र रूपमें मरम्मतकी कोअी गुंजाअिश नहीं । शक्तिके निरन्तर ह्रासके कारण अिस रोगके रोगीका जीवन कुछ हफ्तों या महीनोंमें समाप्त हो जाता है । अुग्र क्षय किसे होता है और वह किस प्रकार रोका जा सकता है, अिसके विषयमें कुछ कहना सम्भव नहीं । मनुष्यका ज्ञान कितना ही क्यों न बढ़ जाय, फिर भी बहुतेरी चीजें अज्ञात ही रहेंगी और जीवन पर होनेवाला अुनका असर भी जाना न जा सकेगा।

अुग्र क्षयकी तरह मन्द क्षय सदा सबके लिअे घातक नहीं होता । अुसके निवारणका प्रयत्न किया जा सकता है और अुसमें सफलता पानेकी पूरी आशा रहती है । पूरी आशाके रहते हुअे भी यह रोग कोअी मामूली रोग नहीं है; यह अेक गंभीर रोग है । स्वरूप अिसका बड़ा अटपटा है । प्रकट होने पर भी अिसका असर झटपट मालूम नहीं होता; यह बीमार और डॉक्टर तकको धोखेमें रखता है ।

सरहदी सूबोंके पास बसनेवाली विदेशी जातियाँ जिस तरह अचानक हमला करती हैं, फिर अचानक रुक जाती हैं, और यों लोगोंके अन्दर निर्भयताका अेक खयाल पैदा करती हैं; ठीक वही हाल अिस बीमारीका है । अिसकी क्रिया शुरू हो जानेके बाद भी बराबर चालू नहीं रहती । कुछ देरके लिअे दिखाअी पड़ती है, फिर कुछ देरको बन्द हो जाती है । बीमारको गफलतमें रखकर यह अुस पर हमला करती है । अिसका संचार गुप्त और अिसकी गति मन्द होती है, अिसलिअे बीमार अिसकी गंभीरताको झट समझ नहीं पाता । कोअी अनुभवी समझाता भी है, तो अक्सर बात गले नहीं अुतरती । शुरूमें, जब शक्तिका ह्रास कुछ कम होता है, तब जैसी सावधानी रखी जानी चाहिये, रखी नहीं जाती; और रोग पर काबू पानेका जो अपूर्व और अनुकूल समय होता है, वह हाथसे निकल जाता है । यह रोग जितना गम्भीर है, अिसको वशमें करनेका अुपाय भी अुतना ही सरल व सादा है । अिसीलिअे अुपायकी अुपयोगिता और अुसकी अनिवार्यता ध्यानमें नहीं आती । अिन और अैसे ही अन्य कारणोंसे जब तक रोग साध्य स्थितिमें होता है, तब तक

असावधानीका बोलबोला रहता है। जब वह असाध्य स्थितिमें जाने लगता है, तब रोगी और अुसके रिश्तेदार रोगकी रुकावटके लिअे जी-तोड़ मेहनत करनेको कमर कसते हैं। स्पष्ट ही यह तरीका अुलटा और घातक है। अिसमें पैसेका खर्च तो बहुत होता ही है, लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह है कि अिसमें प्राण-हानिकी सभावनाका पोषण होता है। ज्यों ही पता चले कि रोग पैदा हो गया है, अुस पर विजय पानेकी चेष्टाको जीवनकी दूसरी सब चेष्टाओंसे प्रधान बना देना चाहिये। अिससे समय कम खर्च होता है, पैसा कम लगता है, और काफी लम्बी अुम्र तक जीनेकी बहुत-कुछ संभावना रहती है।

५

क्षयके लक्षण

क्षयके दो तरहके लक्षण हैं : अेक, ग्रंथियोंके घुलनेसे फेफड़ोंमें जो परिवर्तन होता है, अुसके कारण पैदा होनेवाले आन्तरिक लक्षण और शरीरमें प्रकट होनेवाले दूसरे प्रकारके — खाँसी, बुखार वगैरा जैसे — बाहरी लक्षण। अिन दो तरहके लक्षणोंका समन्वय करके क्षयरोगके होने न होनेका निर्णय किया जाता है। अिन दोमें बाहरी लक्षण खास महत्त्वके हैं, क्योंकि क्षयरोगके जाग्रत या सुप्त होनेका निर्णय अिन्हींके होने न होने परसे किया जाता है। जिस रोगीमें ये लक्षण कम होते हैं, अथवा ज्यादा होते हुअे भी जल्दी वशमें आते हैं, वह थोड़ा-बहुत काम-धंधा शुरू करनेकी शक्ति जल्दी पा लेता है। जब बाहरी लक्षण मिट जाते हैं, रोगीकी ताकत बढ़ती जाती है और वह कामकाज करने लगता है, तब भी आन्तरिक लक्षण बिलकुल नष्ट नहीं होते। अिसकी कोअी निश्चित अवधि भी नहीं है। आगे-पीछे, वर्षों बाद भी, वे अदृश्य हो सकते हैं, शायद न भी हों और जिन्दगी

भर बने रहें। अिस संबंधमें विश्वासपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु जब अेक वार नष्ट होनेके बाद बाहरी लक्षण फिर प्रकट नहीं होते, ताकत बनी रहती है और बढ़ती जाती है, तो बीमारको आन्तरिक लक्षणोंके लिअे चिन्तित रहनेकी ज़रूरत नहीं रहती। वे अपने आप चींटीकी चालसे अदृश्य होते जाते हैं।

आन्तरिक लक्षण अनुमान द्वारा अिस प्रकार जाने जाते हैं: पहले छाती और पीठकी जाँच की जाती है; शरीरके अिन दोनों हिस्सों पर जगह-जगह हाथ रखकर यह देख लिया जाता है कि श्वासोच्छ्वासकी क्रियामें कहाँ-कहाँ विषमता मालूम होती है। अिसके बाद छाती और पीठके जुदा-जुदा हिस्सोंपर अेक हाथकी बीचवाली तीन अँगुलियाँ जरा खुली-सी रखी जाती हैं और दूसरे हाथकी बीचवाली अँगुलीसे पहले हाथकी बीचवाली अँगुलीको ठोका जाता है और अिससे जो आवाज पैदा होती है, वह ध्यानमें रखी जाती है। नीरोग छाती पर ठोकनेसे होनेवाली आवाज अेक प्रकारकी होती है; और जब छातीमें कोअी खराबी पैदा हो रही होती है या हो चुकती है, तो दूसरी तरहकी आवाज निकलती है; दोनोंमें फर्क होता है। पोली चीज़ पर प्रहार करनेसे जो आवाज पैदा होती है, ठोस चीजको ठोकनेसे अुससे बिलकुल भिन्न-अेक दूसरी ही आवाज निकलती है—यह देखी-परखी बात है। जब किसी विक्रिया या खराबीके कारण छातीके नीचेका फेफड़ेवाला भाग घना या ठस हो जाता है, तो अुसे ठोकनेसे जो आवाज निकलती है, वह निर्दोष या नीरोग भागवाली आवाजसे भिन्न होती है। अिस तरह ठोक-ठोक कर ठोस और पोले भागकी जाँच कर लेनेके बाद साँस और अुसाँस लेते समय फेफड़ोंसे जो आवाज सुनाअी पड़ती है, अुसका खयाल रखा जाता है। फेफड़ोंमें साफ हवा बाहरसे अन्दर जाती है और अन्दरकी मैली हवा बाहर निकलती है। यह दोहरी क्रिया जन्मसे लेकर मृत्यु तक बराबर चलती रहती है, जिससे फेफड़ोंमें खास तरहकी बारीक आवाज होती रहती है। जब फेफड़ोंको सरदी लगती है, अुनमें

सूजन आ जाती है, या क्षय-ग्रंथियाँ घुलने लगती हैं अथवा दूसरी कोअी खराबी शुरू होने लगती है, तब यह आवाज बदल जाती है। डॉक्टर लोग अेक नलीकी मददसे अिस आवाज़को सुनते हैं, और सुनकर जैसी वह होती है, अुस परसे फेफड़ोंकी खराबीका अन्दाज़ लगाते हैं।

आम तौर पर लोगोंका खयाल यह है कि क्षयकी तीन अवस्थाअें (stages) होती हैं और अुनका निर्णय खासकर छातीमें सुनाअी पड़नेवाली आवाज परसे किया जाता है। अवस्थाका यह विचार अक्सर आदमीको अकारण ही घबराहटमें डाल देता है। फेफड़ोंकी सभी ग्रंथियाँ अेक साथ अेक अवस्थामें नहीं होतीं और ग्रंथियोंकी अवस्था परसे रोगके स्वरूपका विचार नहीं किया जा सकता। अक्सर होता यह है कि दरअसल बीमार तीसरी स्टेजमें रहता है, लेकिन अुसकी हालत पहली या दूसरी स्टेजवाले बीमारसे अच्छी रहती है और अुसके स्वस्थ होनेकी संभावना भी अधिक रहती है। बीमारके स्वस्थ होने न होनेका आधार ग्रथियोंकी अवस्था पर अुतना नहीं होता, जितना रोगीकी शारीरिक स्थिति पर, अुसकी जीवनी-शक्ति पर और अिस बात पर होता है कि रोगका विष कितना और कैसा है, व फेफड़ोंमें रोगग्रस्त भागकी अपेक्षा रोगरहित भाग कितना है।

क्षयके बाहरी लक्षण अनेक हैं। वे सबके सब हरअेक बीमारमें हमेशा ही, शुरूमें और अेक ही क्रममें नहीं होते। किसी बीमारमें अेक, तो किसीमें दूसरा कोअी लक्षण मुख्य होता है। बाकीके गौण होते हैं और कुछ तो प्रकट भी नहीं होते। किसीको खाँसीका ज़ोर ज्यादा होता है, तो किसीको बलग़मकी शिकायत होती है, किसीका हाज़मा ज्यादा खराब रहता है, तो किसीको साँस-अुसाँस लेनेकी क्रियामें तकलीफ ज्यादा होती है।

वैसे, क्षय कअी रूपोंमें प्रकट होता है। लेकिन अुसका सबसे ज्यादा प्रचलित रूप शरीरको धीमे-धीमे गलाने या सुखानेका है। शुरूमें आदमी थकावटका अनुभव करने लगता है। कभी-कभी रोज़मर्राके

मामूली काम पूरा करनेमें पहलेसे ज्यादा थकान मालूम होने लगती है; अथवा पहले जिस कामको करनेमें थकावट नहीं मालूम होती थी, अब अुसीको करनेमें आदमी थकने लगता है। कभी-कभी काम करनेका दिल नहीं होता, जी अुचटा-अुचटा-सा रहने लगता है। कभी कुछ काम-धन्धा न करने पर भी अकारण ही थकावट-सी मालूम होने लगती है। कभी-कभी बिला वजह मनमें बेचैनी-सी छा जाती है, स्वभाव बदल जाता है; दिल बैठा-बैठा-सा नज़र आता है। अिस तरह शरीर और मन पर अेक अजीब-सा असर पड़ता नजर आता है और यों क्षयका सिलसिला शुरु होता है।

आदमी जल्दी-जल्दी थकने लगता है। अन्न-विषयक अुसकी रुचि और भूख कम हो जाती है। पाचनशक्ति मंद पड़ जाती है। कलेजेमें जलन रहने लगती है। पेटमें हवा रुक जाती है। दर्द रहने लगता है। कब्ज़ वगैराकी शिकायत शुरु हो जाती है। वजन आस्ते-आस्ते कम होता चलता है। धीमे-धीमे कमजोरी प्रकट होने लगती है। शरीर पीला व निस्तेज पड़ने लगता है। मुँह पर रक्तका संचार अेकदम बढ़ जाता है। आवाज बार-बार खरखरी हो अुठती है। खाँसकर या खँखारकर गला साफ करनेकी जरूरत रहने लगती है। थोड़ी-बहुत खाँसी भी रहती है, बलगम गिरने लगता है। नाड़ीकी गति बढ़ जाती है। खूनका दबाव कम हो जाता है। हाथ-पैरोंमें जलन-सी होने लगती है और रातमें, खासकर पिछली रातमें, पसीना छूटता है। कन्धोंमें और छातीमें दर्द होने लगता है। साँस जल्दी-जल्दी फूलने लगती है। बदनमें बारीक-सा बुखार, खासकर शामके समय, रहने लगता है। अिन सब चिन्होंमें से थोड़े-बहुत रोगके शुरूमें बीमारके अंदर पाये जाते हैं।

कभी-कभी रोगका आरंभ सरदी या जुकामसे होता है। अिन्सानको बार-बार जुकाम होने लगता है, अेक बारका जुकाम मिटा न मिटा कि फिर जुकामका हमला हो जाता है और अकसर ढूँढ़ने पर भी अुसके कारणका पता नहीं चलता। अिन्फ्लुअेन्जा, चेचक वगैरा गंभीर रोगोंके

वाद ताकत झटसे नहीं लौटती। अिसी तरह किसी संगीन चोटसे बचनेके बाद भी पुरानी ताकत जल्दी नहीं आती और कमजोरी रहने लगती है।

कुछमें क्षयकी पहचान प्लुरिसीके रूपमें होती है। फेफड़ों पर दो नाजुक पर्तें बहुत नजदीक-नजदीक हैं। साँस-अुसॉस लेते समय ये पर्तें अेक दूसरी पर आती जाती रहती हैं। जब अिन पर्तोंमें सूजन आ जाती है, तो वे आपसमें रगड खाती हैं, जिससे पसलियोंसे अेक टीस सी अुठती है। अिसीको प्लुरिसी कहते हैं। दोनों पर्तोंके बीचकी जगहमें कभी-कभी दूषित पानी भर जाता है और कभी वहाँ पीव भी दिखाअी पडता है। सूखी प्लुरिसीका कारण हमेशा क्षय ही नहीं होता, जुकाम या सरदी जैसे मामूली कारणसे भी वह हो जाती है। फिर भी अेक बार हो जाने पर बरसों परेशान करती है और कभी-कभी अुनसे क्षय हो जाता है। आम तौर पर प्लुरिसीकी शिकायत पैदा होनेके बाद अधिक सावधानी रखनेकी जरूरत रहती है और जब दूषित पानी पैदा हो जाता है, तब तो प्लुरिसी अधिकतर क्षयजन्य ही होती है।

मुँहसे खूनका गिरना क्षयके प्रकट होनेकी अेक खास पहचान है। कभी-कभी खूनके गिरनेका कारण बेहद मेहनत मालूम होती है और कभी वैसा कोअी कारण हाथ नहीं आता। खून ज्यादातर क्षयकी वजहसे ही गिरता है, अिसलिअे यह जरूरी है कि अुसके गिरनेके दूसरे-दूसरे कारणोंकी कल्पना करके अपने आपको धोखेमें न रखा जाय।

क्षयके प्रगट होनेका निर्णय करनेमें बाहरी लक्षण सबसे ज्यादा महत्त्वके माने जाते हैं, फिर भी अक्सर बाहरी और भीतरी लक्षण जितने चाहियें, स्पष्ट नहीं होते, अिसलिअे निर्णय भी नि:शंक रीतिसे नहीं हो पाता। अैसे मौकों पर 'अेक्स-रे' से ली गअी फेफड़ोंकी तसवीर कभी-कभी अुपयोगी साबित होती है। शरीरके अंदर जो कुछ रहता है, वह आम तौर पर देखा नहीं जा सकता। लेकिन अेक्स-रे जैसी अेक खास तरहकी किरणसे कुछ चीजें देखी जा सकती हैं और अुनकी तसवीर ली जा सकती है। अिस तरह अेक्स-रे द्वारा ली गअी तसवीर

अमुक समय पहलेके फेफड़ोंकी स्थितिको बतानेके लिअे रेकॉर्ड या नोंधकी तरह भी अुपयोगी होती है ।

अिसके अलावा क्षयका निर्णय करनेमें कफके पृथक्करणकी भी मदद होती है । यदि कफके अंदर क्षयरजका पता चले, तो बिलाशक यह कहा जा सकता है कि शरीरमें क्षयका संचार है; लेकिन रजके न मिलने मात्रसे यह नहीं कहा जा सकता कि शरीरमें क्षयका संचार नहीं है । जब बाहरी और भीतरी लक्षणोंसे क्षयकी जाग्रतिके विषयमें शंका रहने लगती है, अैसे समय अगर कफमें रजका पता चल जाय, तो क्षयकी जाग्रतिके बारेमें निश्चित निर्णय करना आसान हो जाता है । कफमें क्षयरजके रहते हुअे भी वे अैसे अजीब होते हैं कि आसानीसे नहीं जाने जा सकते और न रोगीके बलग़ममें वे हमेशा होते ही हैं । अिसलिअे यह तय करनेसे पहले कि क्षयरज बिलकुल नहीं हैं, कभी-कभी कफका बार-बार पृथक्करण कराना जरूरी हो जाता है ।

क्षयके लक्षणोंमें कअी तो अितने सामान्य हैं कि अुनके प्रगट होने पर यदि आदमी यह मान ले कि अुसे क्षय ही हो गया है, तो यह जान-बूझकर दुःख मोल लेने जैसी बात हो जाती है । अिसी तरह यदि अुनमें से कुछ लक्षण अकारण चालू रहें और मामूली अिलाजसे तुरन्त दूर न होने पर भी अुनकी अवगणना की जाय, तो पछतावेका मौका आ सकता है । अूपर दिये गये लक्षण प्रकट होने पर अुनके सच्चे कारणका निश्चय करने और अुनका अिलाज करानेके लिअे अिस विषयके किसी जानकार, निस्स्वार्थ और अनुभवी व्यक्तिकी मदद लेनी चाहिये । वह बीमारसे अुसकी बीमारीका सारा वर्णन सुनकर, अुसके भीतरी और बाहरी लक्षणोंकी परीक्षा करके, दोनोंका समन्वय करनेके बाद जो निर्णय करे, अुसे मान लेनेमें हित है । यदि किसी कारणसे अुसका निर्णय कबूल करने लायक न लगे, अथवा अुस पर पूरा विश्वास न जमे, तो अपनेको जो लक्षण मालूम होते हैं अुनकी अवगणना करके चुपचाप बैठे रहनेके बजाय दूसरे किसीकी मदद लेना और मनकी तसल्ली

करा लेना जरूरी है। यहाँ यह बात खास तौर पर याद रखनी चाहिये कि यों क्षय कभियोंको होता है और वह अपने आप मिट जाता है। फिर भी जब अेक दफा वह बाहर आ जाता है, तो अुसपर काबू पानेका सारा दारोमदार समय रहते अुसका ठीक-ठीक अिलाज कराने पर ही है। जब बिला वजह बहुत ज्यादा ढिलाअी होती है, तो रोगसे टक्कर लेनेमें बडी कठिनाअी पैदा हो जाती है, अुस पर फतह पानेमें बहुत वक्त लगता है और खर्च भी बहुत ज्यादा करना पडता है। अिस बीमारी जैसी खर्चीली बीमारी शायद ही कोअी हो। कुछ दिनों या कुछ हफ्तोंमें अिसका अिलाज खतम नहीं हो जाता, मामूली कामकाज करने लायक और पार अुतरने लायक तबीयत तैयार करनेमें महीनों बीत जाते हैं और कभी-कभी बरसोंकी गिनती गिननेका मौका आ जाता है। अिस बीच कमाना-धमाना सब बन्द हो जाता है, दूसरे काम-धन्धे भी छूट जाते हैं और अेक तरह संसारसे निवृत्त हो जाना पडता है। अिस रोगसे बचनेके लिअे मनुष्यको राजी या नाराजीसे ही क्यों न हो, सयम-धर्मको अपनाना पडता है। और अुस धर्मको सहज बनानेके लिअे यह जरूरी है कि आदमी शुरूसे ही बिना ज्यादा गहराअीमें अुतरे — निरर्थक अूहापोहके चक्करमें फँसे — ठीक रास्ते चलना शुरू कर दे। अिसीमें अुसका हित है, शान्ति है और परिणाममें सुख है।

६

क्षयका स्वरूप

नक्षत्रोंमें धूमकेतुकी तरह रोगोंमें क्षय रोग है। जो मामूली नियम दूसरे रोगों पर लागू होते हैं, वे क्षय पर लागू नहीं होते। न्यूमोनिया व टाअिफॉअिड वग़ैरा रोग शरीरमें वेगसे प्रकट होते हैं, अुनका समय और स्थिति करीब-क़रीब निश्चित-सी होती है और अेक बार मिटनेके बाद अक्सर अुनका कोअी असर मरीज पर रह नहीं जाता। बीमार पहलेकी तरह ताकत बटोरकर फिर अपने काम-धन्धेमें लग जाता है और मिटे हुअे रोगकी अुसे फिरसे कोअी चिन्ता नहीं रखनी पड़ती। क्षयकी हालत ठीक अिसके खिलाफ़ होती है। अुसकी अुत्पत्ति अनिश्चित और ज्यादातर मन्द होती है। पूरी तरह प्रकट होने और पहचानमें आनेसे पहले कअी बार अुसका सूक्ष्म-सा प्रभाव कुछ समयके लिअे नजर आता है और फिर सुप्त हो जाता है। मनमें यह शक तक पैदा नहीं होता कि यह सब क्षयकी वजहसे है। कअी अुदाहरणोंमें क्षय अिस तरह थोड़ा-बहुत जाग्रत होकर फिर सुप्त दशामें पड़ा रहता है। बादमें कभी-कभी वह जिन्दगी भर सिर नहीं अुठाता या अितना जोर नहीं पकड़ता कि तन्दुरस्ती पर अुसका कोअी असर मालूम पड़े। अिस तरहका अनोखापन दूसरे किसी रोगमें शायद ही कभी नजर आये।

आलसी या प्रमादी आदमीकी तरह क्षय जागता है, जागता है और फिर सो जाता है। प्रमादी जीव या तो जागता ही नहीं है, और जागता है, तो तमोगुणके नशेमें सब कुछ अुलट-पुलट कर डालता है और जो सामने आ जाता है अुसको बुरी तरह रौंद डालता है। यही हाल क्षयका है। जब किसी तरहके लगातार अतिश्रम (strain) के, परिणाम-स्वरूप शारीरिक शक्तिका ह्रास होता है, तो क्षय जाग अुठता है, और फुफकारना शुरू कर देता है। जब वह अेक बार जाग्रत हो

जाता है, तो फिर जल्दी ही शान्त नहीं होता और शान्त होता भी है, तो अुसके फिरसे जाग जानेकी पूरी सम्भावना रहती है। अेक बार शरीरके अन्दर मजबूतीके साथ अुसका डेरा जम जानेके बाद फिर अुसे अुखाड डालना करीब-करीब असम्भव-सा है। अुचित सार-सँभालके फल-स्वरूप क्षयका रोगी खोया हुआ वजन और ताकत फिरसे पा लेता है, काम-धन्धेसे भी लग जाता है और बीमारीका अुसे खयाल तक भी नहीं रहता, तो भी वह क्षयके असरसे, यानी अुसकी छायासे, छूट नहीं सकता। अिसीलिअे क्षयके बारेमें प्रायः यही कहा जाता है कि वह काबूमें आ गया या दब गया —कोअी यह नहीं कहता कि वह मिट गया या नाबूद हो गया। मतलब अिसका यह हुआ कि रोग न बढ़ता है, न दीखता है, फिर भी वह शरीरसे जडमूलके साथ निकल नहीं जाता। बीज रूपमें वह शरीरके अन्दर हमेशाके लिअे मौजूद रहता है और जमीनके अन्दर बोये हुअे बीजकी तरह अनुकूल सयोग पाने पर अुसके फिरसे अकुरित हो अुठनेकी पूरी सम्भावना रहती है। क्षयका अपना यह स्वरूप है। अिसलिअे दूसरे रोगोंमें जिस तरह रुग्णावस्था और नीरोगा-वस्थाका यानी बीमारी और तन्दुरस्तीका भेद किया जा सकता है, वैसा अिसमें नहीं किया जा सकता। साराश यह है कि क्षय शरीरकी रचना या गठनका रोग है। अुसके प्रकट होते ही शरीरके संगठनमें अेक तरहका स्थायी परिवर्तन हो जाता है। रोगके प्रथम दर्शनके साथ शरीरमें जो बेहद कमजोरी आ जाती है, अुसे दूर करके फिरसे शक्तिसचय करनेवाला क्षयरोगी अिस बातको भूल जाता है कि क्षय कभी निर्बीज नहीं होता और अुसके कारण शरीरका सगठन हमेशाके लिअे बदल जाता है। नतीजा यह होता है कि वह रोगको पूरी तरह अंकुशमें रखनेकी मर्यादाको भूल जाता है। अैसे समय अुसके फिरसे रोगका शिकार होनेकी नौबत आ जाती है।

चूँकि दूसरे रोगोंकी तरह क्षय बिलकुल निर्बीज नहीं होता, अिस-लिअे वह बार-बार प्रबल या निर्बल बनता रहता है। अुसकी निर्बलता

या प्रबलताका आधार हरअेक आदमीकी अपनी जीवनी-शक्तिकी प्रबलता या निर्बलता पर रहता है। चूँकि हक़ीक़त यही है, अिसलिअे क्षयके बीमारकी सार-सँभालका सबसे बड़ा मुद्दा भी यही है कि अुसकी जीवनी-शक्तिके विशेष ह्रासको रोका जाय, और अुसे बढ़ाने व टिकानेकी कोशिश की जाय। वैसे, क्षय पर विजय पानेके लिअे तरह-तरहके अिलाज निकले हैं और हर साल निकलते रहते हैं। अिसके कारणोंमें भी रोगके स्वरूपकी वह विचित्रता ही अेक मुख्य कारण मालूम होती है। तो भी अिस रोगके कुछ अुपाय तो सबके लिअे अनिवार्य हैं। अुनके बिना दूसरे करोड़ो अुपाय बेकार हो जाते हैं। यहाँ तो हमें अुन्हीं अुपायोंका ब्योरेवार विचार करना है, जो अनिवार्य और सर्वसामान्य हैं।

१७

क्षयकी चिकित्सा

क्षयके स्वरूपको ध्यानमें रखते हुअे अुसकी चिकित्साका अेक ही लक्ष्य हो सकता है: रोगीकी शक्तिके ह्रासको रोकना, अुसकी ताकतको बढ़ाना, अैसी परिस्थिति पैदा करना जिसमें वह टिकी रह सके और रोगीको अिस लायक बना देना कि वह फिरसे कामकाज कर सके। ताकतके बारेमें हरअेक रोगीके लिअे अेक-से पैमाने पर परिणामकी आशा नहीं रखी जा सकती। तन्दुरुस्त लोगोंमें भी शक्तिका अपना अेक तारतम्य होता है और क्षयके रोगियोंमें वह विशेष रूपसे पाया जाता है। रोग पैदा होनेसे पहले जो ताक़त रहती है, अुतनी और वैसी ही फिरसे पा लेनेकी अुम्मीद तो की जा सकती है, फिर भी यह साफ है कि सब किसीकी यह आशा हमेशा सफल नहीं होती। पुनः शक्ति पानेका सारा दारोमदार अिस बात पर है कि रोगके भीतरी और बाहरी लक्षण गंभीर हैं या मामूली हैं और रोगीकी सार-सँभालके साधन कैसे हैं। कुछ

बीमारोंके लक्षण अितने असाध्य होते हैं कि अच्छीसे अच्छी चिकित्साके बाद भी रोगी कामकाज करने लायक हालतमें क्वचित् ही आ पाता है। कुछ मामलोंमें पैवदो जितनी सफलता मिलती है, लेकिन कुछमें रोगको दवाने और पूरी तरह अंकुशमें लानेकी सफलता प्राप्त होती है।

क्षयका अिलाज कुछ दिन या कुछ हफ्तोंमें पूरा नहीं होता, अुसके लिअे महीनोंकी जरूरत रहती है और अकसर दो-चार सालकी गिनती भी करनी पडती है। अिलाजके लिअे किसको कितनी मियादकी जरूरत होगी, रोगकी परीक्षाके साथ ही अिसका कोअी अन्दाज नहीं लगाया जा सकता, न अिलाजके दरमियान ही अिस बारेमें कुछ कहा जा सकता है। अेक बात साफ तौर पर कही जा सकती है और वह यह कि रोगीको फिरसे काम-काज करने लायक ताकत पानेमें अेक अनिश्चित और लम्बे समयकी और साधनोंकी आवश्यकता रहती है। रोगीके लिअे आर्थिक साधनोंसे भी बढकर आवश्यकता है अुचित मनोदशाकी। अिस पर रोगके निवारणका जितना आधार है, अुतना और किसी अेक चीज पर नहीं।

अिलाजके दिनोंमें रोगीको अकसर आशा-निराशाके थपेडे खाने पडते हैं और कारण हो या न हो, अकसर अपने सहायककी नाराजी मोल लेनी पडती है। कोअी मौके अैसे भी आते हैं, जब दिलको सदमा पहुँचता है। सच्चे-झूठे अनेक तरहके विचार मनको हैरान करते रहते हैं। मन चिन्तासे घिर जाता है और आदमी अेक तरहकी अुदासीमें डूब-सा जाता है। अकसर आशाका तार टूटता नजर आता है। फिर भी जरूरत अिस बातकी है कि रोगी प्रयत्नशील रहे, अचल और अटल रहे, सावधान और आग्रही रहे। अुसे अपनी बुद्धि और अपने विवेकका हितकर अुपयोग करते रहना चाहिये। भूतकालके विचारोंको भूलकर, चिन्ता छोडकर, प्राप्त परिस्थितिके साथ मन पूर्वक समझौता करके, आसपासके दूसरे सब विचारोंको गौण बनाकर और जो सकट आ पडा है, अुससे झटपट मुक्त होनेके लिये आवश्यक अुपचार

13/6

करनेमें मनको तन्मय बनाकर क्षयके रोगीको अपने लिअे अेक हितकारी मनोदशाका निर्माण कर लेना चाहिये । अुसके लिअे यह जरूरी है कि वह अपने जीवनमें सन्तुलन या समताको प्रधानता दे । अुसकी मनोदशा जितनी सरल और प्रसन्नतायुक्त रहेगी, रोगसे घिरा रहकर भी वह जितना 'शान्त आनन्द' (गांधीजी) अनुभव करेगा और समतावान बनेगा, अुतना ही वह अपने रोगसे जल्दी छुटकारा पा सकेगा । अुसकी अिच्छा हो चाहे न हो, अुसे बहुत-कुछ बरदास्त करना पड़ता है । तो फिर मनको समझाकर वह अपनी तबीयतको सहनशील क्यों न बना ले? वैसे बरदाश्त तो गधा भी बहुत-कुछ करता है, लेकिन अिन्सान समझकर बरदाश्त करता है, और अिसमें बड़ा फर्क पड़ जाता है! गधेको अुसकी सहिष्णुताका कोअी फल नहीं मिलता, जब कि मनुष्यकी सहिष्णुता अुसे महान् संकटसे अुबार लेती है । कलापीने* निरर्थक ही यह केकारव नहीं किया :

"सहन करवुं अेय छे अेक ला'णुं"[1]

अूपर कहा जा चुका है कि क्षयरोगकी चिकित्साका मतलब है रोगीकी शक्तिके लिअे अुपाय सोचना । तन्दुरुस्त हालतमें भी आदमीकी ताकत हर रोज़ खर्च होती है और आराम व खुराक पाकर रोज-रोज नअी शक्ति पैदा होती है । जब अिन दोमें से किसी अेकका अभाव रहने लगता है, तो तन्दुरुस्ती पर अुसका असर भी होने लगता है । जब तक शक्तिके व्यय और अुत्पादनमें ठीक सन्तुलन रहता है, तब तक तन्दुरुस्ती भी अच्छी रहती है । क्षयके पैदा होनेसे पहले यह सन्तुलन बहुत ही अस्थिर हो जाता है । धीमे-धीमे व्ययका पलडा झुकने लगता है और अुत्पत्तिका अूपर अुठने लगता है । और जब यह हालत अेक-सी चलती रहती है, तो रोग भी अपना असर दिखाने लगता है । चिकित्सामें पहली जरूरत शक्तिके सन्तुलनको फिरसे स्थापित करनेकी है, और

---

* गुजरातके अेक प्रसिद्ध स्वर्गीय कवि ।

१ अर्थात्, सहनेमें भी अेक तरहका सुख है।

अुसका सरल, सीधा और सरस अुपाय यही है कि शरीर और मनको सम्पूर्ण आराम पहुँचाया जाय। अुचित आहार, शुद्ध हवा और प्रकाश घटती हुअी शक्तिको रोकने और टिकाये रखनेमें अुपयोगी होते हैं। रोगका जोर कम पडनेके वाद यथासमय क्रमिक व्यायाम करना शक्ति वढ़ानेका अेक अुपाय है। जव अिस तरहका अुपचार नियमित और प्रमाणवद्ध होता है, तभी वह अिष्ट फल देता है। साराश यह कि वीमारीके दरमियान रोगीके लिअे नियम और सयमका पालन अनिवार्य है। जिस तरह विना प्राणके शरीर नहीं टिकता, अुसी तरह अिस नियमके विना क्षयरोगकी चिकित्सा भी सफल नहीं होती। अिस प्रकारके 'आहार-विहार-योग' को आजकलकी भाषामें 'सॅनेटोरियम ट्रीटमेण्ट' कहा जाता है।

क्षयकी चिकित्साके वारेमें अमेरिकन सेनाके सर्जन जनरल वुशमेलका यह कथन वडा मार्मिक है: "क्षयके लिअे हम कोअी दवा नही सुझात, वल्कि अेक खास तरहकी रहन-सहन पर जोर देते हैं।" मानवजातिकी संस्कृति कुछ अैसी वनती आअी है कि मनुष्यको प्राय प्रकृति-विरुद्ध जीवन वितानेका समय आया है। अुसकी रहन-सहनमें कुछ अैसे तत्त्व घुस गये हैं, जो अक्सर अुसके शरीरकी जीवनी-शक्तिको नष्ट किया करते हैं। त्तिस पर भी शरीर कृत्रिमतासे वरावर टक्कर लेता है और आरोग्य अेकदम दुर्लभ नहीं वन गया है। अिसमें हमें शारीरिक शक्तिकी अदम्यताकी अेक झाँकी-सी होती है, लेकिन अुसकी भी अेक हद है। अतिशयताके कारण अुसका अखूट स्रोत भी खूटने लगता है और क्षय जैसे रोगकी अुत्पत्तिके गर्भमें यही सव रहता है। अिलाजके वाद पहलेकी तरह कृत्रिम जीवन वितानेकी ताकत नहीं आती। फलत. क्षयके वीमारको अिच्छा या अनिच्छापूर्वक ही क्यों न हो, अुसका लोभ छोडकर नवीन किन्तु वास्तविक रहन-सहन पर आना पडता है — दूसरा कोअी चारा ही नहीं रह जाता।

८

संस्था और घर

क्षयके अिलाजमें काफी समय लगता है, साधनोंकी भी जरूरत रहती है, अनुकूल वातावरण भी आवश्यक होता है, रोगीकी रहन-सहनमें बहुत-कुछ हेर-फेर और नअी रचना करनी पडती है; जब रोगका जोर ज्यादा होता है, तब रोगीको पूरा-पूरा आराम लेना पड़ता है और डॉक्टरी मददकी जरूरत बनी रहती है। यह सब घरमें आसानीसे नहीं सध सकता। पैसे-टकेकी और दूसरी तंगीकी वजहसे घरमें रहने-सहनेकी सहूलियत और हवा-अुजेलेका प्रबन्ध ठीक-ठीक नहीं हो पाता। घरका वातावरण प्रवृत्तिप्रधान और तन्दुरुस्त लोगोंके अनुकूल होता है; रोगीको निवृत्तिप्रधान वातावरणकी जरूरत रहती है। घरमें तरह-तरहकी हलचलें होती रहती हैं। वे रोगीके आराममें रुकावट डालती हैं। घरके तन्दुरुस्त लोगोंमें वह अकेला पड जाता है। अुसकी दिनचर्या अुनकी दिनचर्याके साथ मेल नहीं खाती। घरवाले अिसके सूक्ष्म रहस्यको झट समझ नहीं पाते, अिसलिअे जाने-अनजाने कलहके कारण पैदा हो जाते हैं। नअी आदतें डालनेका काम मुश्किल हो पड़ता है। घरकी अनेक हलचलोंकी ओर मन खिंचता है; अुनमें भाग लेनेको जी ललचाता है; कअी तरहकी आधि-अुपाधिके कारण आँखके सामने आते रहते हैं; अिससे मनको आवश्यक शान्ति नहीं मिलती; नअी दिनचर्याके अनुसार चलने पर दूसरोंसे मिलने या अुन्हें देखनेका मौका नहीं मिलता, अतअेव अुसकी जरूरत और लाभ झट गले नहीं अुतरते; अनुभवी सलाहकारकी सतत अुपस्थितिका लाभ नहीं मिलता। कुटुम्बके तन्दुरुस्त लोगों और क्षयके बीमारकी रहन-सहन परस्पर बहुत-कुछ भिन्न और विरोधी होती है। परिवारवाले अपनी भावना और बुद्धिकी मददसे अिस भिन्नता और विरोधको कितना ही कम

करनेकी कोशिश क्यों न करें, फिर भी बेवसीके कअी अैसे मौके आ जाते हैं, जब दोनोंको सन्तुष्ट रखनेवाली परिस्थिति पैदा करना मुश्किल हो जाता है। अिन्हीं सब कारणोंसे युरोप व अमेरिकामें क्षयवालोंके लिअे संस्थाअें कायम की जाती हैं। ये संस्थाअें 'सॅनेटोरियम' कहलाती हैं और अिनमें जिस ढंगसे बीमारका अिलाज किया जाता है, वह 'सॅनेटोरियम ट्रीटमेण्ट' कहलाता है।

सॅनेटोरियमका मतलब सिर्फ अितना ही नहीं है कि वहाँ अच्छी जगह, अच्छे मकान, रहनेकी अच्छी सहूलियत, अच्छी खुराक वगैरा शरीरके लिअे आवश्यक सभी सुविधाओंका प्रबन्ध रहता है। यह सब तो अुसका अेक अंगमात्र है और अैसा प्रबन्ध तो ताजमहल जैसे होटलमें भी हो सकता है। क्षयरोगीको अुसके भलेके लिअे अुसके अपने परिवारवालोंसे अलग किया जा सकता है, लेकिन अुसकी अन्तरात्माको भूखों मारकर अुसकी अवगणना नहीं की जा सकती। अुसे तूफ़ानी समुद्रमें अेकाकी तैरनेवालेकी तरह अकेला नहीं छोड़ा जा सकता। स्वस्थ मनुष्यकी तरह अुसे भी माया-ममताकी और प्यारकी ज़रूरत रहती है। जब रोगी रोगसे घिरा होता है, तब तो अुसे अिनकी और भी जरूरत रहती है। सच्चा सॅनेटोरियम वही है, जहाँ रोगीको प्यार और मनुहारकी गरमी मिलती रहती है। संस्थाके लिअे यही प्राणरूप है। अिसके अभावमें संस्था अशक्तों या बीमारोंको घेरे रखनेकी अेक जगह-मात्र — पिंजरापोल — रह जाती है। फाअुलर कहता है कि, "सॅनेटोरियम संस्था नहीं, वह अेक वातावरण है।" बिना माया-ममताके वातावरण न तो पैदा हो सकता है, न पनप सकता है। रोगीको अपनी ममताकी छायामें रखनेके लिअे तेजस्वी, विवेकी और प्रभावशाली व्यक्तिकी आवश्यकता होती है।

युरोप और अमेरिकामें क्षयके अिलाजके लिअे सॅनेटोरियम संस्थायें काफी तादादमें हैं, लेकिन वहाँ क्षयके बीमारोंकी संख्या भी अितनी ज्यादा होती है कि अुनमें से कअियोंको अपना अिलाज घर रहकर ही कराना पड़ता है। कहा जाता है कि अकेले अमेरिकामें हर साल दस लाख

आदमी क्षयसे बीमार पड़ते हैं, जबकि सिर्फ सत्तर हजार बीमारोंके लिअे संस्थाओंमें प्रबन्ध किया जा सकता है (मेयर्स)। हमारे देशमें भी क्षय फैल रहा है। लेकिन संस्थामें, यानी सॅनेटोरियममें रहकर क्षयका अिलाज करानेकी अनुकूलता यहाँ दुर्लभ है। क्षयके संबन्धमें सरकार बहुत-कुछ अुदासीन है। संस्थाअें अिनी-गिनी हैं और अुनमें भी सॅनेटोरियमके जिस स्थूल अंगका अूपर वर्णन किया है, अुसका प्रबन्ध हमेशा अेकसाँ और सन्तोषजनक नहीं होता। जब तक अुदाराशय और अुदात्त व्यक्तियोंकी दयादृष्टि क्षयरोगियोंके अिस वर्गकी ओर नहीं मुड़ती, तब तक देशमें सुव्यवस्थित, प्राणवान और सजीव संस्थाओंकी कमी बनी ही रहेगी। अतअेव संस्थामें रहकर क्षयका अिलाज कराना कितना ही वांछनीय क्यों न हो, तो भी आजकी दशामें कुछ अिने-गिने रोगी ही अुनसे लाभ अुठा सकते हैं। घर पर अिलाज करानेकी आवश्यकता विदेशोंमें भी कम नहीं है। संस्थाओंकी कमी और हमारी सारी परिस्थितिके कारण हमारे यहाँ अिसकी आवश्यकता अधिक ही है।

यह तो स्पष्ट है कि अिलाजका विचार करते समय घरको भुला देना संभव नहीं है। अच्छी संस्थाओंके रहते हुअे भी अिलाजमें समय अितना ज्यादा लग जाता है कि कुछ ही बीमार देर तक संस्थाओंमें रह सकते हैं। अुन्हें घरमें रहकर अपने अिलाजका और सावधानीके साथ रहन-सहन आदिका प्रबन्ध करना ही पड़ता है। अिसी प्रकार जब संस्थाओंमें रहकर बीमार चलने-फिरने और काम करने लायक हो जाता है, तो भी कुछ नियम तो अुसे जीवनभर पालने पड़ते हैं। अिसलिअे संस्थाके अिलाजकी अुत्तमताको मानते हुअे भी रोगीके जीवनमें घरका महत्त्व कम नहीं होता।

घर पर अिलाज करानेमें कअी खास कठिनाअियाँ हैं और वे ज्यादा हैं। पर अिसका यह मतलब नहीं कि वहाँ अिलाज हो ही नहीं सकता अथवा अुसका संतोषजनक परिणाम निकल ही नहीं सकता।

अगर घरमें 'आहार-विहार-योग' का पालन किया जाय, तो निराश होनेके मौके कम ही आते हैं।

घर पर अिलाज कराते समय बीमारको अपने स्नेहियों और संबन्धियोंकी अनुकूलता और सहायताकी अनिवार्य आवश्यकता रहती है। लेकिन अुनका सहज स्नेह ही बीमारके लिअे अुपयोगी नहीं हो सकता; अुपयोगी होता है, मात्र विवेकयुक्त स्नेह। रोगी रोगके कारण स्वास्थ्य जैसी अमूल्य वस्तुको खो देता है, अुसे पुनः प्राप्त करनेके लिअे यह आवश्यक है कि अुसके निकटके स्नेही-संबन्धी क्षयके बारेमें सामान्य ज्ञान प्राप्त करके विवेकपूर्वक अुसकी सहायता करें।

९

प्रदेश

क्षय खासकर शहरी रोग है। शहरोंमें वह अितनी ज्यादा तादादमें क्यों पाया जाता है अिसके कारण स्पष्ट हैं। शहरमें जितना कृत्रिम जीवन बिताना पड़ता है, अुतना और कहीं नहीं। शहरोंमें शुद्ध और स्वच्छ हवा, पानी, प्रकाश और खुराककी व रोशनीदार घरोंकी तंगी होती है और कअी तरहका अतिश्रम करनेके मौके ज्यादा आते हैं। वहाँ अच्छे साधनसंपन्न लोगोंके लिअे भी अकसर अूपरकी चीजें प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। अैसी दशामें मर्यादित और संकुचित साधनवाले क्या करें? बम्बअी जैसे शहरमें तो पैसे देने पर भी शुद्ध दूध या घी, खाने-पीनेकी शुद्ध चीजें, खुली हवादार और भरपूर रोशनीवाली जगहें वगैरा प्राप्त करनेमें कितनी कठिनाअी होती है, सो किसीसे छिपा नहीं है। अिसलिअे जब शहरवालोंको क्षय हो जाता है, तो अुनके लिअे ज्यादा नहीं तो कमसे कम अिलाजकी मियाद तक तो शहरके बाहर रहना लाजिमी हो जाता है।

तव फ़ौरन ही सवाल यह पैदा होता है कि शहर छोड़कर और कहाँ जाया जाय? अगर बीमारकी माली हालतका, अुसके परिवार और और अुसकी घरगिरस्तीका विचार किये बिना अिस सवालका जवाब देना हो, तब तो अच्छीसे-अच्छी जगह ही ध्यानमें आती है। लेकिन ये बातें मामूली नहीं हैं। जगहका चुनाव करते समय अिन सब बातोंका खयाल न रखनेसे बीमारकी तकलीफ बढ़ सकती है। जब जगहका चुनाव बीमारकी हैसियतका खयाल रखकर किया जाता है, तभी अुसे अुस जगहसे जो थोड़ा-बहुत लाभ मिलनेवाला होता है, सो मिलता है। अैसी तो कोअी बात नहीं है कि क्षय किसी खास जगहमें ही होता है, और न यही सच है कि वह किसी खास प्रदेशमें ही अच्छा होता है यानी क़ाबूमें आता है। क्षय पर विजय पानेमें जो सफलता मिलती है, अुसका आधार किसी अेक चीज पर नहीं होता; यानी परिस्थितिके अनुसार कभी अिसे तो कभी अुसे प्रधानता या गौणता देनी पडती है, और जो सफलता मिलती है, वह अिलाजके अनेक अंगोंके फलस्वरूप होती है। यदि ठीक-ठीक सुख-सुविधाका प्रबन्ध किये बिना बीमारको किसी अनजान जगहमें भेज दिया जाय, तो अुस जगहके सब तरह अच्छी होने पर भी बीमारको अुससे कम ही फायदा पहुँचता है और अकसर फ़ायदेकी जगह नुक़सान ज्यादा होता है। देवलालीसे पंचगनी अच्छी जगह है। लेकिन पचगनीमें रहने-सहनेकी आवश्यक सुविधा न हो और देवलालीमें वह भरपूर हो, तो बीमारको पंचगनीकी अपेक्षा देवलालीमें फ़ायदा होनेकी संभावना ज्यादा रहती है। क्षयके अिलाजमें प्रदेश या स्थानको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देनेकी जरूरत नहीं। रोग-निवारणमें प्रदेश कोअी चमत्कार नहीं कर सकता। पोटेन्जर लिखता है: "क्षयके अिलाजके लिअे कोअी खास जगह निश्चित नहीं। अिलाज कहीं भी कामयाबीके साथ किया जा सकता है।" अिस सारे सवाल पर ग़ौर करके वह आखिरमें लिखता है: "अच्छीसे अच्छी जगहमें यथेच्छ भ्रमण करनेकी अपेक्षा मैं अुस बुरीसे बुरी जगहमें रहना

ज्यादा पसंद करूँगा, जहाँ सोच-समझकर, विवेकपूर्वक, अिलाज हो सके। क्षयकी जो आवश्यक चिकित्सा है, वह तो अच्छीसे अच्छी और बुरीसे बुरी जगहमें भी अेक ही रहनेवाली है। जगह अुत्तम हो या अधम, बीमारको सर्वत्र नीचे लिखी बातोंकी जरूरत तो रहेगी ही: आराम, खुली और ताजी हवामें रहना, पुष्टिकारक खुराक और समय आने पर व्यायाम या कसरत। ये चीजें हर जगह मिल सकती हैं। अगर रोगी आम तौर पर अूँचे या अच्छे माने जानेवाले प्रदेशोंमें जाकर अपना अिलाज नहीं करा सकता, तो सिर्फ अिसीलिअे अुसे निराश होनेकी जरा भी जरूरत नहीं है। अिलाजके लिअे अच्छी जगह जानेको फिशबर्ग तो अेक तरहका वैभव या विलास ही समझता है। मतलब यह कि जैसे जीवनके लिअे वैभव या विलास आवश्यक नहीं होता और न वह सबको सुलभ ही होता है, वैसे ही अुत्तम प्रदेशमें रहना क्षयकी चिकित्साका कोअी आवश्यक अंग नहीं। बीमारको किसी खास प्रदेशके अभावसे दुखी होनेकी जरूरत नहीं, अुसके लिअे तंगदस्तीका सामना करनेमें कोअी फायदा नहीं, न अपनी हैसियतसे ज्यादा खर्च करनेकी कोअी ज़रूरत है। प्रदेशके पीछे पागल होकर जहाँ-तहाँ न भटकनेसे जो रकम बचेगी, वह रोगीको अुसके अिलाजमें दूसरे प्रकारसे खूब काम आयेगी।"

अिसका मतलब यह तो नहीं हो सकता कि स्थान या प्रदेशका प्रभाव शरीर पर बिलकुल पड़ता ही नहीं, अथवा सब जगहोंका प्रभाव अेकसाँ होता है। जिस प्रदेशमें हवाकी गरमी कुछ ही घटती-बढ़ती है, जहाँ हवामें नमी कम और सरदी ज्यादा रहती है, जहाँ हवाकी चाल धीमी होती है, जिस जगहकी हवा कुल मिलाकर शरीरको मीठी और मनको आह्लादक मालूम होती है, अिसमें शक नहीं कि वह अेक अूँचे दर्जेका प्रदेश है। लेकिन आरामकी तरह वह अितना अनिवार्य नहीं कि अुसके बिना क्षयका अिलाज ही न हो सके, या कि वह बेकार हो जाय और अुसका कोअी संतोषजनक परिणाम न निकले।

प्रदेशको जरूरतसे ज्यादा महत्त्व देनेमें अेक और खास बुराअीको भी भूलना न चाहिये। दुनियामें अैसे स्थान विरले ही हैं, जहाँ बारहों महीने अेक-सी हवा रहती हो। हमारे देशमें भी किसी प्रान्तमें गरमी कम होती है, तो किसीमें जाडेका जोर कम होता है और कहीं बारिश मामूली होती है। अैसे प्रान्त या प्रदेश अंगुली पर गिने जाने लायक ही हो सकते हैं, जहाँ तीनों ऋतुअें सौम्य हों। अगर हम प्रदेशके महत्त्वको बहुत ज्यादा बढ़ा देते हैं, तो हमें ऋतु-परिवर्तनके साथ प्रदेश-परिवर्तन भी करना पडता है, क्योंकि अिलाज तो महीनों और कभी-कभी अेक या अेकसे अधिक बरस तक चलता है। यह तरीका सबके लिअे साध्य नहीं है; अिससे बीमारकी परेशानी बढ़ती है। खास तौर पर अुसके आरामको धक्का पहुँचता है और बेमतलबकी नअी-नअी अुपाधियोंके बढ जानेका डर रहता है।

जैसा कि अूपर कहा गया है, अिलाजके लिअे कुछ अिनी-गिनी चीजें ही अनिवार्य हैं। कोशिश हमारी यह होनी चाहिये कि हरअेक बीमारको वे मिलें। अुपयोगी होते हुअे भी जो चीजें गैरजरूरी-सी हैं, अुनमें से बीमारकी आर्थिक, सामाजिक और कौटुम्बिक स्थितिके अनुसार जितनी सुलभ हों, अुतनी अिष्ट हैं।

१०

आराम

चिकित्साकी सफलता या विफलताका आधार अिस बात पर नहीं कि क्षयरोगी किस प्रदेशमें रहता है, बल्कि अिस बात पर है कि वह जहाँ रहता है, वहाँ किस तरह रहता है। पचगनी जैसे अुम्दा पहाड़ पर रहनेवाला बीमार भी अगर मनमाना बरते और मनमाना खाये-पीये, तो अुसके तन्दुरुस्त होनेकी आशा कम रहती है। लेकिन देवलाली जैसी जगहमें अथवा अुससे भी घटिया किसी जगहमें — बम्बअीके काँदीवली जैसे अुपनगरमें — रहकर भी अगर बीमार नियमका पालन करता है और अेक नियत दिनचर्या पर चलता है, तो अुसके अच्छे होनेकी पूरी आशा रहती है।

आराम अिलाजकी जान है। क्षय जैसे चीकट रोगको वशमें लानेके लिअे आरामसे भी अधिक मोहक और आकर्षक अिलाज हर साल सामने आते हैं और हर साल गायब हो जाते हैं। क्षयकी सफल चिकित्साके रूपमें दुनियाके सामने कअी चीजें रखी जाती हैं, जैसे खाने-पीनेकी दवाअें, भापके रूपमें और सुअीके जरिये लेनेकी दवाअें और तरह-तरहके चिरागोंकी सेंक वग़ैरा। लेकिन अिनमें से अेक भी चीज अब तक अैसी नहीं निकली, जो क्षयके अिलाजमें आरामकी गरज सार सके, अथवा अैसी परिस्थिति पैदा कर सके, जिससे आरामकी ज़रूरत न रह जाय। आरामका सहारा लेकर अनेक क्षयरोगी अपने घर वापस आये हैं और आते हैं। लेकिन जो लोग अूबकर या आरामके महत्त्वको कम मानकर अथवा अुसे घटिया ढंगका अिलाज समझ कर अुसका त्याग करते हैं, या आराम नहीं करते और अच्छा होनेके लिअे आरामके सिवा दूसरे अिलाजोंमें आशा लगाकर बैठते हैं, अुनमें से विरले ही पार लगते हैं।

तन्दुरुस्त आदमी भी दिनभरके कामके बाद थकता है, लेकिन अुसकी थकावट अुस कामको छोड दूसरे काममें लग जाने या सो लेनेसे अकसर अुतर जाती है, और अेक निश्चित कामको लगातार देर तक करते रहनेसे जो थकावट या अुकताहट पैदा होती है, वह कुछ देरके लिअे अुस कामसे हट जाने पर कम हो जाती है। तन्दुरुस्त लोगोंके लिअे कामकी अदला-बदली थकान मिटानेमें बहुत-कुछ कामयाब होती है। लेकिन क्षयके बीमारके लिअे कामका हेर-फेर या कामसे छुट्टी काफी नहीं होती। अपना रोजमर्राका चालू काम करते रहनेमें या मनबहलावके लिअे कुछ देरको दूसरे काममें लग जानेमें ताकत तो अेक-सी ही खर्च होती है। सुबहसे शाम तक रोजगार-धन्धा चलानेमें ताकत घटती है। शामके वक्त घूमने जाने या खेल-कूदमें शामिल होनेसे भी शक्तिका ह्रास होता है। जिन कामोंसे ताकत कम होती है, क्षयके बीमारके लिअे वे काम मना हैं।

क्षयका बीमार यानी अेक बेहद थका हुआ आदमी। अगर कुअेंको पानीसे लबालब रखनेवाला कोअी सोता सूखने लगे, तो जिस तरह कुअेंका पानी सपाटेसे कम हो जाता है, अुसी तरह क्षयकी वजहसे रोगवाले अंगके मूल तंतुओंका ही नाश होने लगता है, जिससे शरीरकी शक्ति अनेक रूपोंमें कम होती जाती है। क्षयके बीमारकी थकावट अूपरी नहीं, असाधारण या गैर-मामूली होती है। असाधारण थकान अुतारनेके लिअे आराम भी असाधारण होना चाहिये।

पशु-पक्षियोंको जब चोट लगती है, तो वे आराम करते हैं, खासकर चोट खाये हुअे भागको आराम देते हैं और खुली जगहमें लेटकर अपने जख्मको सुखाते या अच्छा करते हैं। शरीरके किसी हिस्सेकी हड्डीके सरकने या टूटने पर आदमी भी अपने अुस हिस्सेको आराम पहुँचाता है। जब शरीरकी सन्धियाँ या जोड जकड जाते हैं, तो आराम करनेसे अुनकी जकड जल्दी छूटती है। जब शरीरके किसी हिस्सेमें सूजन आ जाती है, तो अुस हिस्सेका हिलना-डुलना बन्द कर देनेसे

सूजन जल्दी कम होती और अुतर जाती है । जो नियम शरीरके अूपरी हिस्सोंकी चोट वगैराके लिअे है, वही शरीरके भीतरी अवयवोंको भी लागू होता है । निमोनियामें फेफड़ोंके अंदर सूजन आ जाती है, जिसे अुतारनेके लिअे बीमारको बराबर लिटा रखते हैं । टाअिफॉअिडमें आँतोंके अन्दर जो जख्म पड जाते हैं, अुन्हें रुझानेके लिअे पूरा आराम करनेको कहा जाता है । क्षयमें फेफडोंकी सूजन होती है। क्षय-ग्रन्थियाँ आस्ते-आस्ते घुलती और पकती हैं । अुनके अन्दरका जहर सारे शरीरमें फैलता है और शरीर सूखने लगता है । फेफडोंको जितना ही आराम मिलता है, विषका वेग अुतना ही कम होता है और शरीरका शोषण भी रुकता है । जरूरत पडने पर शरीरके दूसरे अवयवोंको तो कुछ समयके लिअे निरुद्यमी भी रखा जा सकता है, लेकिन फेफडोंको साँस-अुसाँस लेनेमें बिलकुल रोका नहीं जा सकता । अगर रोका जाय तो आदमी फौरन मर जाय । फिर भी अगर शरीरको ज्यादा हलचल न करने दी जाय, तो फेफडोंका काम बहुत हलका हो जाता है और अुन्हें ज्यादा आराम मिलता है । नींदमें शरीरकी शक्तिका ह्रास कम और मरम्मत ज्यादा होती है । अगर कुम्भकर्णकी तरह क्षयका बीमार लगातार छः महीने सो सके, तो रोगको लेकर सोने पर भी जागने पर वह नीरोग नजर आयेगा। लेकिन यह तो कल्पनाकी दुनियामें हो सकता है । सचमुचकी दुनियामें तो सोने और जागनेकी बारी बँधी रहती है। अगर रोगीको हर रोज गहरी और बिना सपनोंवाली नींद मिला करे, तो अुसका फल भी अुसे जरूर मिलेगा। जागनेकी हालतमें आदमीको चलने-फिरने या खडे होनेमें जो मेहनत पडती है, बैठे रहनेमें अुतनी मेहनत नहीं पडती । पैरोंको लटकाकर बैठनेकी अपेक्षा अुन्हें समेटकर और सहारेसे बैठनेमें मेहनत अुससे भी कम पडती है और पूरी तरह फैलकर सोनेमें शरीरको कमसे कम ताकत खर्च होती है ।

जब तक रोगके विषका प्रभाव मालूम होता हो, रोगीको दिन-रात बिछौने पर ही रहना चाहिये — और कोअी चारा नहीं । बिना अिसके

न तो दर्द या शूल कम हो सकता है, न मिट सकता है, न रोगके विषकी गति मन्द हो सकती है, न बन्द हो सकती है, और न फिरसे अुठने-बैठने, चलने-फिरने या कामकाज करनेकी ताक़त आ सकती है।

बिछौनेमें भी बीमार जिस ढंगसे लेटा रहेगा, अुसीके अनुसार अुसे कम या ज्यादा आराम मिलेगा। सबसे ज्यादा आराम तो तब मिलता है; जब शरीरको फैलाकर आदमी अपने अंग-अंगको बिलकुल ढीला छोड़कर सोता है। बिछौनेमें बिना किसी चीजके सहारे बैठना ठीक नहीं; तकियेके सहारे भी बहुत देर तक बैठना मुनासिब नहीं, लोट लगाना भी अुचित नहीं। अिससे थकान पैदा होती है और आरामका जो फल मिलना चाहिये, अुसके मिलनेमें रुकावट पैदा होती है। आरामके लिअे कमानीदार या अुसी ढंगके दूसरे ढीले पलंग वगैरा निकम्मे हैं। जब बिछौना बहुत सख्त, बहुत मुलायम या बहुत ढीला होता है, तो ठीक-ठीक आराम नहीं मिलता और करवट बदलते वक्त या किसी कामसे बैठते वक्त बीमारको थकान-सी मालूम होती है।

मनुष्यके पास सिर्फ शरीर ही नहीं है; मनन करनेवाला मन भी अुसके पास है। बिछौनेमें पड़े-पड़े शरीरको पूरा-पूरा आराम पहुँचाते हुअे भी अगर चंचल मन मनमाना भटकता रहे, सुख-दुःखके विचार करता रहे, रंज और अुदासीमें डूबा रहे, खुशी और नाराजी पैदा करता रहे, रोगके बारेमें कअी तरहके खयाल अुपजाता रहे, आअी हुअी मुसीबत पर रोता रहे, चिन्तासे घुलता रहे और बारबार अैसी हालत पैदा करता रहे कि जिससे साँस लेनेमें रुकावट हो, तो साफ है कि आरामका असर कम होगा। शरीर और मन दोनों अेक-दूसरे पर असर करते हैं। दोनोंको बराबर आराम मिलना चाहिये। मन जितना ही बेफिक्र और खुश रहेगा, अुतना ही फायदा होगा। अिसमें अति होनेका कोअी डर नहीं। मनको अुद्योगरहित रखनेकी आदत डाल लेनेसे रोग पर विजय पानेका मार्ग सरल हो जाता है; जिससे रोगके बादका जीवन भी खिला

हुआ रहता है, और समय-समय पर जो विकट परिस्थितियाँ पैदा होती हैं, अुनमें बिना घबराये धीरजसे काम लेनेकी आदत बनती है।

शय्या पर पड कर आराम लेनेवाला बीमार अगर अपनी जबानको वशमें नहीं रखता और बकवास किया करता है, तो अुससे भी आरामका असर कम होता है। बोलनेमें फेफडोंको खास तौर पर मेहनत पडती है, और आराम करनेमें फेफड़ोंको आराम पहुँचानेकी बात ही मुख्य है। बहुत बोलने और बात-बात पर हँसनेके साथ फेफडोंको आराम पहुँचानेकी अिच्छा रखना सूरजके बिना अुसकी रोशनीकी आशा रखनेके समान है। रोगीको अपने हितके लिअे मितभाषी बनना चाहिये।

आरामका असर तुरन्त होता है—वह प्रत्यक्ष है। अुसकी वजहसे कमजोरीका बढ़ना रुकता है, वजन बढता है, बुखार अुतरने लगता है, नाड़ीकी गति कम होती है, भूख खुलती है, रोगके लक्षण दबते और दिखने बन्द होते हैं और फलतः शरीर धीरे-धीरे फिर काम करने लायक़ बनता है। आरामका यह परिणाम कोअी आश्चर्यकी बात नहीं है। यह सोचना या शक करना फ़िज़ूल है कि सिर्फ पडे रहनेसे क्षयके बीमारको भूख न लगेगी या अुसकी ताकत घटेगी और अुसके अंग शिथिल हो जायँगे। रोगकी खराबियाँ जहरके कारण पैदा होती हैं। रोगीमें कमजोरी या भूखकी कमी और रुचिका अभाव वगैरा आरामके कारण नहीं, रोगकी भीषणताके कारण पैदा होते हैं। मेहनत करनेसे रोग बढ़ता है और अुसमें खतरनाक खराबियाँ पैदा हो जाती हैं। दूसरी हालतोंमें हाजमा सुधारने और शरीरको मजबूत बनानेके लिअे मेहनत-मशक्कतका अुपयोग है। लेकिन जब क्षय जोर पर होता है, तब श्रम विषका काम करता है। यह तो हर कोअी समझ सकता है कि शरीरको मजबूत बनानेके मामूली नियम क्षयवालेके कामके नहीं होते। जब रोगी अपनी या अपने मित्रों और रिश्तेदारोंकी आराम-विरोधी मौजों या तरंगोंके वश होकर आरामसे मुँह मोड लेता है, तो वह अपने हाथों अपना बेहद नुकसान कर लेता है।

आराम सचमुच किस हद तक किया जाय, अिसका विशेष वर्णन ज्वर और व्यायामवाले अध्यायमें किया जायगा। यहाँ सिर्फ यही कह देना काफी होगा कि जब क्षयका बुखार, नाडीकी रफ्तार और शरीरका हदसे ज्यादा शोषण वशमें आ जाता है, या दूर हो जाता है, तो आस्ते-आस्ते आराम कम करके व्यायाम शुरु किया जा सकता है। फेफड़ोंकी भीतरी हालतके पूरी तरह सुधरने तक सम्पूर्ण आराम करनेकी अिच्छा कुल मिलाकर अेक गलत और अन्तमें नुकसान पहुँचानेवाली चीज है। फेफडोंकी भीतरी हालतको बिलकुल अच्छी बनानेके लिअे ज्यादा नहीं, तो कमसे कम तीन-चार साल शय्यावश रहनेकी जरूरत है, और यह अेक जानी हुअी बात है कि अैसा करनेमें अनेक कठिनाअियाँ हैं। अिस रास्ते जानेसे रोगीके फेफडे बिलकुल अच्छे हों चाहे न हों, अेक काम जरूर होता है, और वह यह कि रोगीका शरीर और अुसका मन जीवनमें रस लेने और काम करने लायक नहीं रह जाता। अुस दशामें रोगी रूखे-सूखे स्वभावका, कमजोर, निस्तेज और पशु-सा बन जाता है। चिकित्साका हेतु केवल साँस-अुसाँस चालू रखना नहीं होता। हरअेक आदमी जीवनमें किसी न किसी तरहकी दिलचस्पी रखता है, रखना चाहता है। अुसकी अपनी कोअी खास निश्चित या अनिश्चित धारणा होती है। अिसलिअे जब आदमी बीमार पड़ता है, तो वह फिरसे तन्दुरुस्त होनेकी कोशिश करना चाहता है। अुसूली तौर पर अिलाजसे बहुत-कुछ फायदा हो सकनेकी अुम्मीद रहती है, लेकिन हरअेक रोगीका अलग-अलग विचार करना पडता है; और जिस रोगीके लिअे जो चीज सबसे ज्यादा संभव मालूम होती है, अुसका आग्रहपूर्वक स्वीकार और पालन करने पर ही रोगीको कुछ फायदा हो सकता है। अिस बातका पूरा खयाल रखना चाहिये कि आरामकी अति न हो जाय और अुससे अुसकी नैतिक हानि न हो। क्षयरोगीके लिअे वही आराम सुखकर होता है, जो अेक हिसाबसे लिया जाता है; नहीं तो अुलटे तकलीफ बढ़ती है।

११

ताज़ी हवा

क्षयके अिलाजमें ताज़ी हवा जरूरी है। यह हवा सबसे ज्यादा और हमेशा आसमानके नीचे खुलेमें मिलती है, और सबसे कम घरके अन्दर। बीमारको मौसिम देखकर अपनी सहनशक्तिके अनुसार खुलेमें, छायामें या घरके अन्दर अैसी जगह रहना चाहिये, जहाँ सबसे ज्यादा हवा मिल सके। ताजी हवासे फ़ायदा अुठाते समय पूरी-पूरी समझदारीसे काम लेना चाहिये।

हवा, पानी और अनाज ये तीनों हर आदमीकी जिन्दगीके लिअे ज़रूरी हैं। बिना अन्नके आदमी कुछ हफ्ते जी सकता है, अन्न और पानीके बिना भी वह कुछ दिन निकाल सकता है, लेकिन हवाके बिना तो वह अेक पल भी नहीं जी सकता। हवाका यही महत्त्व है। कुदरतमें अन्नसे ज्यादा पानी और पानीसे भी ज्यादा हवा पाअी जाती है। दुनियाकी सतह पर अैसी कोअी जगह नहीं, जहाँ हवा न हो।

हवाका प्राणपोषक तत्त्व — ऑक्सीजन — सब जगह है। जहाँ हवाके आने-जानेका कमसे कम और बुरेसे बुरा बन्दोबस्त है, वहाँ भी आदमीके लिअे ज़रूरी ऑक्सीजन मौजूद रहता है। अैसी जगहोंमें भी अुसका परिमाण अेक प्रतिशतसे ज्यादा शायद ही कभी घटता है; और अुसमें दस फीसदी कमी हो जाने पर भी आदमी आरामसे रह सकता है।

ऑक्सीजन या प्राणवायु जीवनके लिअे बहुत अुपयोगी है। शरीरमें अिसकी मात्रा ज़रा भी कम होती है, तो आदमी अपने आप गहरी साँस लेने लगता है और अिस तरह प्राणवायुकी कमीको पूरा कर लेता है। कोअी पहलवान या कसरती आदमी जोरोंकी कसरत

करता है, तो अुसके शरीरमें प्राणवायुकी खपत खूब बढ़ जाती है, अिसीलिअे साँस जल्दी-जल्दी चलने लगती है। अगर कोअी ज़रूरतसे ज्यादा गहरी साँस लेता है और शरीरके अन्दर प्राणवायु ज्यादा मात्रामें चली जाती है, तो सिर चकराने लगता है और आदमीको मूर्च्छा-सी आ जाती है। प्राणवायु अग्निमय है। अगर कोअी प्राणवायु-प्रधान हवा बनाकर अुसमें घण्टों रहना चाहे, तो अुसके लिअे वह जहर-सी हो जाती है। वह फेफड़ोंमें जलन पैदा कर देती है। जो लोग 'हवाखोरी' के लिअे घरसे बाहर निकलते हैं, वे ज्यादा प्राणवायु लेने नहीं निकलते। हवाखोरीका लाभ तो ताज़ी हवामें है।

जिस तरह साँसके जरिये बाहरकी साफ हवा अन्दर जाती है, अुसी तरह फेफड़ोंके अन्दरकी गन्दी हवा भी बराबर बाहर निकलती रहती है। यह गन्दी हवा 'कार्बन डी ऑक्साअिड' कहलाती है। हवामें यह चीज़ थोड़ी मात्रामें रहती है। साँससे यह जितनी निकलती है, अुसके कारण अिसकी मात्रामें कोअी गैर-मामूली बढ़ती नहीं होती। हवामें अिसकी मिलावट अितनी नहीं होती कि नुकसान पहुँचावे। कमरेके अन्दर बहुत ज्यादा भीड़ हो जाने पर भी वहाँकी हवामें कार्बन डी ऑक्साअिडकी मात्रा आधे प्रतिशतसे ज्यादा नहीं बढ़ती। जब तक तीन प्रतिशतसे अधिक वृद्धि न हो, अिसका कोअी बुरा असर नहीं होता। सिर्फ खानोंके अन्दर और सीलवाले कमरोंमें यह हानिकारक मात्रामें पाअी जाती है।

हवाके तीन मुख्य तत्त्व हैं: नाअिट्रोजन, ऑक्सीजन (प्राणवायु) और कार्बन डी ऑक्साअिड। जिस तरह बहुत तेज़ तेजाबको पानी मिलाकर हलका बनाते हैं, अुसी तरह नाअिट्रोजन अग्निमय ऑक्सीजनको हलका बनाता है। हवाके अिन तत्त्वोंकी मात्रामें आम तौर पर कोअी फर्क नहीं पड़ता, फिर भी कभी-कभी आदमी हवासे मिठास और आह्लाद आदिका अनुभव करता है, और कभी हवामें अुसका दम घुटता-सा है; वह घबराहट, बेचैनी और परेशानीका अनुभव करता है। अिसकी

वजह ऑक्सीजनकी कमी या कार्बन डी ऑक्साअिड की अधिकता नहीं होती। आराम या बेचैनीका आधार हवाकी तासीर पर है।

हवामें गरमी, नमी और वेग या गति है। अिन तीनोंके मेलसे हवाकी तासीर बनती है। अलग-अलग प्रदेशोंमें और सालके अलग-अलग महीनोंमें, रोज-रोज और दिनमें अलग-अलग वक्त पर अिन तीनों तत्त्वोंमें घट-बढ होती रहती है। सालमें ज्यादासे ज्यादा जो घट-बढ होती है, अुस परसे किसी अेक प्रदेशकी औसत हवाका निश्चय किया जाता है। अंग्रेजीमें अिसे अुस जगहकी क्लाअिमेट यानी जलवायु कहते हैं। किसी प्रदेशकी ज्यादासे ज्यादा घट-बढ़के बीच हवामें बार-बार जो हेर-फेर होते हैं, वह अुस जगहका वेदर यानी मौसिम कहलाता है। अच्छी और बुरी हवाका भेद अिन तीन तत्त्वोंके न्यूनाधिक परिमाण परसे जाना जाता है।

मनुष्यमें हवाके हेर-फेरको बरदाश्त कर लेनेकी अेक अजीब ताकत है। वह रेगिस्तानकी बेहद गरमी और ध्रुवप्रदेशकी भीषण सर्दीको, पर्वत शिखरकी सूखी और समुद्रतटकी गीली हवाको सह सकता है। खूब तेज़ और अेकदम स्थिर हवाको भी वह बरदाश्त कर लेता है। सुबह समुद्र किनारे रहने और शामके वक्त पहाडकी चोटी पर जानेमें भी अुसकी तबीयतमें कोअी फर्क या खराबी पैदा नहीं होती।

शरीरके अन्दर जो तरह-तरहकी क्रियायें होती रहती हैं, अुनमें शरीरकी गरमीको लगातार अेकसाँ रखनेकी क्रिया बराबर चलती रहती है। बहुत ज्यादा मेहनत करनेसे शरीरकी गरमी १०३ और १०४ डिग्री तक पहुँच जाती है, लेकिन मेहनत बन्द करनेके अेकाध घण्टेके अन्दर बढी हुअी गरमी कम हो जाती है और शरीर पूर्ववत् गरम मालूम होने लगता है। जब तक शरीरके अन्दर गरमीकी अुत्पत्ति और निवृत्ति सन्तुलित रहती है, तब तक हवाके हेर-फेरसे शरीरको नुकसान नहीं पहुँचता। तन्दुरुस्त आदमीके अन्दर यह क्रिया भली-भाँति होती रहती है, अिसलिअे वह रेगिस्तानमें हो या ध्रुवप्रदेशमें, हवाके परिवर्तनसे

अुसे तकलीफ नहीं होती। सख्त गरमीमें वह झुलस नहीं जाता और कड़ाकेकी सरदीमें वह ठिठुर नहीं जाता।

हवा सर्द या गरम, सूखी या गीली, तेज या कुन्द होती है। सर्द, सूखी और चंचल या तेज हवा सबसे अच्छी होती है, गरम, गीली और कुन्द हवा सबसे बुरी। अिन दोनोंके बीच अच्छी-बुरी हवाके कअी भेद होते हैं। अुत्तम या अधम हवा किसी अेक प्रदेशमें हमेशा मौजूद नहीं रहती। अुसमें बार-बार तब्दीलियाँ हुआ करती हैं।

हवाके अन्दर गरमी, नमी और चंचलताकी मात्रामें जो घट-बढ़ होती है, अुसके अनुसार हवाके गुणमें भी फर्क पड़ता है। सरदी शरीरकी शक्तिको सतेज बनाती और आराम पहुँचाती है, गरमीसे शक्ति कम होती और बेचैनी बढ़ती है। नमीवाली हवाके मुकाबले सूखी हवा शरीरकी गरमीको कम चूसती है। कुन्द या स्थिर हवाके मुक़ाबले चंचल या तेज हवा शरीरकी गरमीको ज्यादा खींचती है। वह ज्यादा ताज़ी होती है और फलतः ज्यादा सुख और आराम पहुँचाती है।

हवामें सरदी और नमीके साथ गति भी हो, तो शरीरकी बहुतेरी गरमी अुसके साथ निकल जाती है और शरीर-तंत्रमें अेक खिंचाव पैदा होता है। अैसी हालतमें शरीरको गरम रखनेके लिअे अन्न, वस्त्र और परिश्रमकी मदद न ली जाय, तो शरीर सर्द हो जाय और ज्यादा देर तक सर्द बना रहे तो नुकसान हो।

सूखी गरमीकी अपेक्षा नमीवाली गरमी ज्यादा थकान और बेचैनी पैदा करती है। पानीमें गरमीको सोखने और अुसका संग्रह करनेकी शक्ति बहुत है, अिसलिअे नमीवाली गरमीमें सबसे ज्यादा बेचैनी होती है। रेगिस्तानमें हवाकी गरमी १२० डिग्रीसे ज्यादा होने पर भी वह सही जा सकती है, क्योंकि अुस हवामें नमी नहीं होती। लेकिन नमीवाली हवाकी गरमी, बम्बअी जैसे शहरमें, १०० डिग्री होने पर भी परेशानी पैदा कर देती है।

जब हवा गरम और नमी कम होती है, तो वहाँ छायामें और रातमें ठण्ढक रहती है। देवलालीमें नमी कम है, अिसलिअे वहाँ चैत-वैसाखकी रातें भी अपेक्षाकृत ठण्ढी होती हैं। चूँकि बम्बअीकी हवामें नमी बहुत है, अिसलिअे गरमियोंमें वहाँकी रातें ठण्ढी होती भी हैं, तो बड़ी देरमें और कुछ ही वक्तके लिअे। नमीवाली हवाके कारण जाड़ोंमें सरदी और गरमियोंमें गरमी ज्यादा मालूम होती है।

जब हवा बिलकुल बन्द होती है, तो जी घबराने लगता है, कामकाज करनेकी अिच्छा नहीं होती और मन खुश नहीं रहता। पंखेमे कुन्द हवामें थोडी गति आ जाती है और तब घबराहट कुछ कम मालूम होती है।

घरके अन्दरकी हवा बाहरकी हवाके मुकाबले कम चंचल और अिसीलिअे कम ताजी होती है, अिसलिअे आदमीको घरमें रहनेकी अपेक्षा बाहर रहनेमें ज्यादा आराम मालूम होता है और जी हवाखोरीके लिअे बाहर जाना चाहता है। घर कितना ही अच्छा क्यों न बनाया जाय, दीवालोंके कारण हवाकी गति रुकती ही है। चूँकि घरके अन्दरकी हवा अुतनी चंचल नहीं होती, अिसलिअे वह झट-झट बदलती नहीं, और अिसीसे कुछ हद तक बासी रहती है। बाहरकी हवाके मुकाबले वह ज्यादा गरम मालूम होती है और अकुलाहट पैदा करती है।

घरके अन्दरकी हवाको सबसे अधिक शुद्ध रखनेका अेक ही अिलाज है · घरमें दरवाजे और खिडकियाँ अिस तरह आमने-सामने बनाअी जायँ कि अेक तरफसे आनेवाली हवा दूसरी तरफ आरपार निकल सके। लेकिन अैसे चारों तरफसे खुले घर कम ही बनते हैं, अिसलिअे तन्दुरुस्त लोगोंको भी रोज जहाँ तक हो सके ज्यादासे ज्यादा खुली हवामें रहना चाहिये। खुलेमें हवा हमेशा ताजी रहती है, अुसका असर झट मालूम पडता है, रक्त-जननतत्त्व (metabolism—मिटाबोलिज़्म) में, यानी खून पैदा करनेकी ताकतमें सुधार होता है, भूख खुलती है, हाजमा

सुधरता है, नींद गहरी आती है और कुल मिलाकर सारे शरीरकी ताकत बढ़ती है ।

शरीरको नीरोग रखनेमें त्वचा या चमड़ीका अपना खास महत्त्व है । शरीरमें परिश्रम वगैरासे पैदा होनेवाली अतिरिक्त गरमी और दूसरी गन्दी चीजें चमड़ीके जरिये बाहर निकलती हैं । अगर हवा शरीरका स्पर्श न करे तो चमड़ी अपना काम ठीकसे कर नहीं सकती । अिससे शरीर और मनकी स्फूर्ति कम होती है, अन्न सम्बन्धी रुचि और भूख घटती है, गहरी और थकान मिटानेवाली नींद नहीं आती और खाये हुअे अन्न पर होनेवाली विविध प्रक्रियाओं द्वारा शरीरमें जो खून बनता है, अुसके बननेकी क्रिया भी — रक्तजननविधि (metabolism) — मंद पड जाती है । बहुतोंको सिरसे पैर तक ओढ़कर सोनेकी आदत होती है । अुन्हें प्राणवायु तो मिलती रहती है, लेकिन चूँकि अुनके शरीरके आसपास ताजी हवाकी आमद-रफ्त कम होती है, अिसलिअे बाहरकी हवाके मुकाबले अुनके शरीर ज्यादा गरम होते हैं । शरीरकी यह बढ़ी हुअी गरमी बाहर निकल नहीं पाती, अिसलिअे शरीरको जो ताक़त मिलनी चाहिये, वह नहीं मिलती । नतीजा अिसका यह होता है कि नींद अुचटी-अुचटी रहती है, कभी-कभी दिलकी धड़कन बढ़ जाती है, और सोनेवाला नींदमें बार-बार चौंक अुठता है । बन्द या स्थिर हवा अेक तरहकी बासी हवा होती है । अुसमें रहनेसे शरीर खूब गरम हो अुठता है ।

गरमियोंमें पानी ज्यादा पीने और गरम खुराक कम खानेसे गरमीकी तकलीफ कम हो जाती है । पानी अेक साथ बहुत-सा पी लेनेसे अच्छा यह है कि थोड़ा-थोडा करके कअी बार पीया जाय । बर्फवाले पानीके मुकाबले मटकेका ठण्ढा पानी अच्छा हाता है । बर्फवाला पानी हाजमेको बिगाड़ता है । महीन, गिने-चुने और सफेद रंगके कपडे गरमीको सहनेमें मदद पहुँचाते हैं । गरमियोंमें मेहनत भी कुछ कम ही करनी चाहिये और सो भी दिनके ठण्डे समय ही कर लेनी चाहिये । सर्दियोंमें बदनको

गरम रखनेके खयालसे जो लोग बेहद कपडे पहनते हैं और शरीरको हवाका स्पर्श तक नहीं होने देते, अुन्हें सरदीका फायदा कम ही मिलता है।

क्षयका बीमार मौसिमके माफिक बननेकी अपनी ताकतको कुछ हद तक खो चुका होता है, फिर भी अिसको लेकर अुसे बहुत ज्यादा तकलीफ नहीं अुठानी पडती। धीरज और शान्तिसे काम लेने व फिजूलकी घबराहटसे बचनेसे जो थोड़ी कठिनाअी मालूम होती है, वह भी अक्सर दूर हो जाती है। जब हवा ज्यादा गरम हो अुठती है, और खासकर जब अचानक अैसा हो जाता है, तो कअी मरीजोंके 'टेम्परेचर' यानी तापमान पर अुसका असर पडता है। शरीरकी गरमीमें अेक या आधी डिग्रीका अिजाफा हो जाता है। यह अिजाफा चूँकि अेक खास वजहसे होता है और कुछ ही देरके लिअे होता है, अिसलिअे अिससे रोगको किसी तरहका पोषण नहीं मिलता। अैसी हालतमें सिर्फ मेहनत कम कर देनी चाहिये।

कअी बीमारोंके क्षयके साथ फेफड़ोंकी श्वासनलीमें सूजन भी होती है। जब हवामें नमीकी मात्रा बेहद बढ जाती है, तो कमी-कमी अैसे बीमारोंको काफी परेशानी होती है और बलगम बढ जाता है। लेकिन अिस चीज़को जरूरतसे ज्यादा महत्त्व देकर स्थान परिवर्तनकी खटपटमें पडना आवश्यक नहीं। हवामें होनेवाले हेर-फेरके साथ जगहकी हेरा-फेरीका खयाल हास्यास्पद और अव्यावहारिक है। औरोंकी तरह क्षयका बीमार भी मौसिमी परिवर्तनोंको बरदाश्त करना सीख जाता है।

"क्षयरोगीको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि अुसके तन्दुरुस्त होनेका सारा दारोमदार सिर्फ मौसिमी परिवर्तनोंपर नहीं है। अगर वह रोग मिटानेके आधुनिक तरीकों पर दिलसे अमल करता है, तो अकेले वातावरणमें अैसी कोअी चीज नहीं है, जो अुसकी बीमारीमें खराबी पैदा करे।" (पोटेंजर)

ताज़ी और खुली हवाकी जितनी अुपयोगिता और आवश्यकता स्वस्थ मनुष्यके लिअे है, अुससे ज्यादा क्षयरोगीके लिअे है। अुससे जो फायदे

तन्दुरुस्त आदमीको होते हैं, वे अुसे भी होते हैं। लेकिन अुनके सिवा बीमारको कुछ और लाभ भी होता है; जैसे, अक्सर अुसका बुखार अुतर जाता है या कम हो जाता है और रोगके दूसरे कअी लक्षण दबने लगते हैं। क्षयके बीमारको हवासे डरना नहीं चाहिये। घरमें रहते समय अुसे चारों ओरसे बन्द सन्दूकनुमा कमरेमें न रहकर किसी अैसे कमरेमें रहना चाहिये, जहाँ ज़्यादासे ज्यादा हवा आती हो। जिस कमरेमें हवाके आने-जानेका पूरा प्रबंध नहीं होता, अुसमें रहनेवालेका सिर गरम और पैर ठण्ढे रहने लगते हैं। लेकिन दरअसल ज़रूरत यह है कि सिर ठण्ढा और पैर गरम रहें। चचल या तेज हवा अुपयोगी है, लेकिन सनसनाती हुअी जोरदार हवा नुकसान पहुँचाती है। अिसलिअे कमरेमें रहते समय पलंग, खाट या कुरसी वग़ैरा अैसी जगह लगानी चाहिये, जहाँ हवाके झकोरे सीधे आकर न लगें। खिडकियोंमें छोटे-छोटे महीन परदे लगा रखनेसे भी हवाका जोर कम हो जाता है।

अूपर हवाका त्वचाके साथ जो संबंध बताया गया है, अुस परसे यह बात सहज ही समझमें आ सकती है कि क्षयके बीमारोंको और दूसरे लोगोंको भी जरूरतसे ज्यादा कपडे पहनने या ओढ़ने न चाहिये। अिससे नुकसान ही होता है।

ताजी हवा जितनी दिनमें जरूरी है, अुतनी ही रातमें भी। रातको नींदमें शरीरके अन्दर मरम्मतका जो काम ख़ास तौर पर होता रहता है, ताजी हवा न मिलनेसे अुसमें रुकावट पड़ सकती है। रातकी हवा दिनकी हवासे किसी तरह घटिया नहीं होती। अुससे डरनेकी कोअी जरूरत नहीं। अक्सर रातमें सरदी ज्यादा होती है, अिसलिअे अुसके हिसाबसे कपड़ोंमें जरूरी हेर-फेर कर लेने पर नुकसानका कोअी डर नहीं रह जाता।

युरोप जैसे देशोंमें जब कड़ाकेकी सरदी गिरती है, तो वहाँ क्षयरोगीके लिअे आम तौर पर चौबीसों घण्टे खुलेमें रहना मुमकिन नहीं

होता । हमारे यहाँ गरमियोंमें सख्त गरमी पड़ती है, अिसलिअे अुस ऋतुमें दिनभर और बारिशमें बारिशके समय खुलेमें रहना सधता नहीं । लेकिन सख्त गरमीमें भी दिनके कुछ घण्टे छोड़कर बाकी सुबह-शामके ठण्डे समयमें और रातको भी हवाके झोंकोंसे बचते हुअे खुलेमें रहा जा सकता है । हवाके तेज झोंकोंकी तरह ही धूपसे बचना भी जरूरी है । धूप और सनसनाती हवासे बचनेके लिअे खुलेमें जरूरतके मुताबिक थोड़ी आड़ और छायाका प्रबन्ध कर लेना चाहिये । कमजोर शरीरको धूपसे लाभके बदले हानि होती है । सिर्फ जाड़ोंमें, जब कड़ाकेकी सरदी पड़ती हो, सुबह-शाम कुछ देर धूपमें बैठ लेनेसे बदनमें गरमी आ जाती है । धूपके बारेमें आगे 'प्रकाश' वाले परिच्छेदमें कुछ खास बातें और लिखी जायेंगी ।

हमने देखा कि हवा कितनी अुपयोगी है । लेकिन हवा और आँधीके बीच बड़ा भारी फर्क है । हवा खानेमें अति होनेका कोअी डर नहीं, लेकिन आँधीके झकोरोंका सामना करनेसे नुकसानका पूरा डर है । सुधरती हुअी तबीयत झोंकोंकी लपेटमें आकर बिगड़ जाती है और अुसे सँभालना भारी हो जाता है । धीमी हवाका सेवन करना अुचित है, लेकिन जोरकी सनसनाती हुअी हवासे बचनेमें भलाअी है ।

दिनके २४ घण्टोंमें से जितने घण्टे खुली हवामें रहनेको मिलें, अुतना ही फायदा है । लेकिन अिसमें समझदारीसे काम लेना चाहिये । बीमारकी सहनशक्तिके अनुसार छाया वगैराका प्रबन्ध कर लेना चाहिये । हरअेक बीमार खुली हवासे अेकसाँ लाभ नहीं अुठा सकता, प्रबन्ध अैसा होना चाहिये कि जिससे हरअेकको अधिकसे अधिक लाभ मिले । जब खुली हवामें रहना मुमकिन न हो, तब भी ताजी हवावाली जगहमें तो रहना ही चाहिये — बिना अुसके काम चल नहीं सकता ।

हवाका विचार करते समय जुकाम या सरदीका खयाल तुरन्त आता है । जो लोग ताजी और खुली हवामें रहते हैं, अुन्हें जुकामकी शिकायत शायद ही कभी होती है । अगर कभी होती भी है, तो

वह हवाकी वजहसे नहीं, वल्कि किसी और वजहसे ही होती है । जो वन्द और वासी हवामें रहते हैं, अुन्हें जुकाम ज्यादा होता है । वन्द हवामें शरीर अधिक गरम रहता है, अैसे में जव किसी कामसे वाहर जाना पडता है, तो वाहरकी सरदीवाली हवाका असर वुरा पड़ता है और जुकाम हो जाता है । जुकामसे वचनेके लिअे खुली और ताजी हवाका त्याग करनेकी जरा भी जरूरत नहीं ।

जिस तरह जोरकी सनसनाती हवा मना है, अुसी तरह गरम हवा भी मना है । गरमियोंमे जव लू चलती हो, तो अुससे वचना चाहिये । सख्त गरमीके दिनोंमें नीचे लिखा वन्दोवस्त रखनेसे हवाकी गरमी कम सताती है और वेचैनी या घवराहटसे छुटकारा मिलता है : घरके अन्दर रहना, पखेका अुपयोग करना, कमरेके फर्श पर पानी छिडकना, खिडकियोंमे घास और खसकी टट्टियाँ वाँध कर अुन्हें पानीसे तर रखना, समय-समयसे कपाल पर गीले कपडेकी पट्टी रखना, या मिट्टीको साफ करके छान लेना, अुसमें पानी मिलाना, और पानी मिली मिट्टीके पिंडको कपडे पर फैलाकर अलसीके पुल्टिसकी तरह अुसे ललाट पर रखना, वगैरा-वगैरा ।

१२

प्रकाश

सूर्य संसारका प्राण है। वैदिक ऋचामें अुसका वर्णन '**प्राणो वै सः**'के रूपमें किया गया है। अगर सूरज न हो, तो सृष्टिका अन्त हो जाय, हवा साफ न रहे; दुनियाको निर्मल पानी न मिले, अन्न और फल न पकें, वनस्पतिका विकास न हो, संसारकी प्रगति रुक जाय — विकास थम जाय। दुनियाकी सारी हलचलें, सारे काम-काज, समस्त स्फूर्ति सूरजकी वजहसे है। सूर्य सृष्टिकी शक्तिका अेक अक्षय-पात्र है, जगत्‌का सूत्रधार है।

प्रकाश शरीरको क्षीण होनेसे रोकता है, ग्लानिका नाश करता है, मनको प्रफुल्लित रखता है, जीवनको आनन्दमय बनाता है अुत्साह बढ़ाता है, अन्तःकरणको तृप्ति और शान्ति प्रदान करता है। जहाँ प्रकाश है, वहाँ अुल्लास है, जहाँ अन्धकार है, वहाँ अुद्वेग है। प्रकाशकी अवगणना करके अँधेरी खोहमें रुँधे रहनेसे निस्तेजता, निर्बलता और खिन्नता ही पल्ले पड़ती है।

अुजेला और धूप दोनों सूरजके कारण हैं, फिर भी दोनोंमें जो भेद है, वह वास्तविक है और व्यवहारमें कामका है। सुबह-शाम दोनों समयकी संध्याके वक्त सब जगह अुजेला रहता है, सूरजके अुगने पर खुली जगहोंमें धूप आ जाती है, छायावाली जगहोंमें अुजेला छा जाता है। अुजेला सबके लिअे जरूरी है। वह रोगीको भी चाहिये और नीरोगीको भी। अगर अुजेला न हो, तो सबको बड़ी परेशानी अुठानी पड़े। अुजेला जितना ज्यादा होता है, अुतना ही अच्छा रहता है। क्षयका बीमार अँधेरेमें रह नहीं सकता। अगर रहता है, तो अुसके क्षयमुक्त होनेकी संभावना नामको ही रह जाती है। जो रोगी गुलेमें रह पाता है, अुसे आवश्यक अुजेला आसानीसे मिल जाता है। जब

घरमे रहना पड़े, तो अुसे सबसे ज्यादा अुजेलेवाले कमरेमें रहना चाहिये। अुजेलेके मारफत सूरजका फ़ायदा चुपचाप मिलता रहता है। जहाँ अिससे फायदा अुठानेमें आलस्य या लापरवाही की जाती है, वहाँ तन्दुरुस्त होनेका समय टल जाता है। खुलेमें किसी पेड़की छाया तले या वैसे घटादार और छायादार पेड न हों, तो घास-फूसके छप्परकी छायामे रहनेसे अुजेलेका लाभ ठीक-ठीक मिल सकता है। अिसमें अतिशयताकी कोअी सभावना नहीं रहती।

किन्तु, धूपकी बात अैसी नहीं है। कअी लोग क्षयवालोको धूपमें पडे रहनेकी सलाह देते हैं, लेकिन वह खतरनाक है।

सूर्यस्नान द्वारा कअी तरहकी बीमारियोको मिटानेका अेक तरीका चालू है। अिस स्नानकी अपनी विधि है। अुस विधिको छोड़कर चलनेसे तकलीफ ही होती है। सूर्यकी जामुनी किरणें सुखप्रद मानी जाती हैं। ये किरणे नंगे शरीर पर पड़कर भी शरीरके अन्दर गहरी नहीं अुतर पातीं। अिनका जो भी असर पड़ता है, वह चमडी तक ही रहता है, और चमड़ीके जरिये, अप्रत्यक्ष रूपसे, सारे शरीर पर पडता है। सूर्य-किरणसे फायदा अुठानेके लिअे शरीर पर कपड़े न रहने चाहियें; क्योंकि कपडोंको भेद कर शरीर पर असर डालनेकी शक्ति किरणोंमें नहीं होती। किरणोंका लाभ तभी मिलता है, जब वे सीधी नंगे शरीर पर पड़ती हैं। कपड़े पहनकर धूपमें बैठनेसे रत्तीभर भी लाभ नहीं होता, नुकसान कअी होते हैं। शरीर गरम और सिर भारी हो जाता है, बेचैनी पैदा होती है। गरमी लगनेका पूरा-पूरा डर रहता है। सब कोअी जानते हैं कि जब सिरमें गरमी चढ़ जाती है या लू वगैरा लग जाती है, तो अच्छे तन्दुरुस्त आदमी भी अचानक मरते देखे जाते हैं। शरीरके किसी खास हिस्से पर किरणोंकी सेंक लेनेसे शायद ही कभी फायदा होता है। हवाकी लहरें सिर पर और मुँह पर लहराती हैं, तो अेक स्फूर्ति-सी मालूम होती है; लेकिन अगर अुन्हीं स्थानों पर सूरजकी सीधी किरणें ली जायें, तो बेचैनी पैदा हो

जाती है। बिलकुल नग्न रहकर किरण-स्नान करनेके लिअे भी शरीरको क्रम-क्रमसे अुसकी आदत डालनी पडती है।

क्षयके कीटाणुओंसे 'ट्यूबर्क्युलिन' नामकी जो दवा अिंजेक्शनके लिअे तैयार की जाती है, अुसकी पिचकारी लगवानेसे रोग अेकदम भडक अुठता है और अगर अुसकी मात्रा ज्यादा होती है, तो रोगका जोर लम्बे अर्से तक रहता है और अक्सर हमेशाके लिअे बुरा असर पैदा कर जाता है। सूर्यकी किरणोंसे भी अैसा ही कुछ होनेकी संभावना रहती है। बिना किसी अनुभवीकी सहायताके अुसका प्रयोग कभी न करना चाहिये।

दूसरे रोगोंकी चिकित्सामें भी सूर्यकिरणका प्रयोग करते समय पूरी सावधानी रखनी पडती है, क्षयरोगमें तो अुसके लिअे बहुत ही कम गुन्जाअिश है। क्षयका बीमार बहुत ज्यादा कमजोर हो चुकता है और अुसके शरीरकी स्थिति बहुत नाजुक बन जाती है। जब रोग जोर पर होता है, तब शरीरमें बुखार भी रहता है, और अुस हालतमें तो बीमारको आरामकी ज़रूरत रहती है। अुसकी चिकित्सामें तेज अुपाय काम नहीं देते। अगर बुखारकी हालतमें अुसे धूपमें बैठाया जाय, तो रोग बढ़ जाता है. यानी बुखार बढ जाता है, नाडी जोरसे चलने लगती है, साँसकी गति तेज हो जाती है, भूख घट जाती है, अकुलाहट और बेचैनी पैदा होती है और रोगके विदकी गति धीमी पडनेके बदले तेज़ हो जाती है। फेफडोंके क्षयमें बुखारके जोरसे रोगका ज़ोर मालूम होता है और रोलियर अुस हालतमें सूर्यस्नान करनेकी सलाह बिलकुल नहीं देता। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, क्षयरोगीके शरीरमें गरमीकी अुत्पत्ति और निवृत्तिकी क्रिया खंडित हो जाती है, सूर्यस्नान द्वारा गरमी बढाकर अुसे और अधिक छिन्न-भिन्न न करना चाहिये। क्षयके दुर्बल रोगीके पास कडे प्रयोगों द्वारा शरीर-निर्माण करनेका अवसर नहीं होता। प्रयोगके रूपमें धूपके कडुअे फल चखनेमें कोअी लाभ नहीं।

१३

आहार

क्षयरोगकी अुत्पत्तिके अनेक कारणोंमे आहारदोष अेक महत्त्वका कारण है । बहुतोंको पैसे-टकेकी तंगीकी वजहसे पूरा और पुष्टिकारक आहार हमेशा नहीं मिलता । और चूँकि आज समाजमें पैसेका ही बोलवाला है, अिसलिअे औसत आदमीको खाने-पीनेकी शुद्ध और साफ़ चीजें प्राप्त करनेमें कठिनाअी और महँगाअीका सामना करना पड़ता है । अिससे शरीरकी जीवनीशक्ति जितनी रहनी चाहिये अुतनी प्रबल रह नहीं पाती और रोगोंको शरीरमें प्रवेश करनेकी अनुकूलता प्राप्त हो जाती है । आज मामूली हैसियतवाले या मध्यवित्त परिवारोंमें क्षयका जो अितना प्रसार हुआ है, अुसके कारणोंमें आहार-दोषका हाथ कम नहीं है । अुधर पैसे-टकेसे सुखी लोग अपनी शरीरप्रकृतिके प्रतिकूल अति आहार-विहारमें पड़कर अपनी शारीरिक शक्तिको निर्बल बना डालते हैं ।

चूँकि क्षयरोगमें शक्तिका ह्रास बहुत ज्यादा होता है, अिसलिअे अुसे रोकने और शक्ति बढ़ानेके लिअे आहारकी कमियोंको दूर करनेका काम क्षयचिकित्साका अेक जरूरी अंग बन जाता है । क्षयका बीमार पंचगनी जैसे बढ़िया प्रदेशमें जाकर न रहे तो काम चल सकता है, लेकिन सब तरहके अनुकूल आहार या खुराकके बिना काम नहीं चल सकता ।

क्षयके अिलाजमें किसी खास तरहकी खुराककी जरूरत नहीं रहती । जरूरत सिर्फ यह रहती है कि जो कुछ खाया जाय, वह पर्याप्त, अुचित और पुष्टिकारक हो । खानेकी चीज़ें सभी शुद्ध, साफ़, भली-भाँति पकी हुअी, रुचिके माफिक और आसानीसे खाने लायक होनी चाहियें ।

क्षयरोगीको दिनभर खाअूँ-खाअूँ करते रहनेकी कोअी जरूरत नहीं; बल्कि अिससे अुसे बेहद नुकसान होता है। शरीरको ताकतवर बनानेके लिअे बेहद खानेकी बात सोचना गलत और हानिकारक है। ताकत बढानेके लिअे तो अच्छा, सादा और पूरा आहार, ताजी हवा, आराम, और नियमित कसरत ही अुपयोगी है। बहुत ज्यादा खानेकी आदत हाजमेको हमेशाके लिअे बुरी तरह बिगाड़ देती है। यह जरूरी नहीं है कि जो लोग मोटे और वजनदार होते हैं, वे सब ताकतवर भी हों। बेहद वजन बढाना आहारका अुद्देश्य न होना चाहिये। अिसी तरह क्षयके बीमारको न तो भूखों रहनेकी जरूरत है, न अपनी शक्तिसे कम, यानी आधापेट खानेकी जरूरत है। बुखार रहे या न रहे, अपनी रुचि और भूखके अनुसार खानेमें कोअी हर्ज नहीं, बल्कि अुससे शक्तिके ह्रासकी गति कम होती है और आरामके कारण रोगका विष ज्यों-ज्यों दबता है, त्यों-त्यों अन्नकी रुचि और भूख खुलती है और धीमे-धीमे आहारकी मात्रा भी ठीक हो जाती है। अिस बातका कोअी आम नियम नहीं बनाया जा सकता कि बीमारको कितना और कैसा आहार करना चाहिये। सिर्फ अितना ही कहा जा सकता है कि अितना न खाना चाहिये कि जिससे अजीर्ण हो जाय। जो कुछ खाया जाय, वह हजम हो जाना चाहिये और अुससे बेचैनी या घबराहट बढनी अथवा पैदा होनी न चाहिये। क्षयरोगीके अच्छे होनेका बहुत-कुछ आधार अुसकी पाचनशक्ति पर रहता है। वह जितनी अच्छी रहेगी और रखी जायगी, अुतना ही लाभ होगा, अगर अुसका जतन करनेमें गफलत हुअी, तो बेहद नुकसान हो सकता है।

चूँकि यह बीमारी लम्बी होती है, बीमार बार-बार अुकता जाता है, खानेमें अरुचि प्रकट करता है, कम खाता है या भूखों रहता है। लेकिन अिससे अन्तमें नुकसान होता है। जो चीज रुचिके साथ खुशी-खुशी खाअी जाती है, स्वास्थ्य पर अुसका असर भी बहुत अच्छा पड़ता है। जिस तरह बोरेमें नाज भरा जाता है, अुस तरह पेटको अन्नसे सिर्फ

भरना ही नहीं है। बीमारको अैसी कोअी चीज बनाकर न देनी चाहिये, जिसके कारण अुसे अन्नमात्रसे अरुचि हो जाय। अन्नको पचानेके लिअे शरीरके अन्दर जो रस पैदा होता है, अुस पर मनका प्रभाव जैसा-तैसा नहीं होता, मनको अन्नसे अरुचि न हो जाय, अिसका खास तौर पर खयाल रखना चाहिये। खाते समय मन शान्त और प्रसन्न रहना चाहिये और धीमे-धीमे खूब चबा-चबाकर खाना चाहिये। अिंग्लैंडके मशहूर प्रधानमन्त्री मि० ग्लैडस्टन अिसी तरह खाते थे और खानेमें जो देर लगती थी, अुसकी जरा भी परवाह नही करते थे। अगर अेक बडे भारी साम्राज्यके कर्णधारको खानेके लिअे वक्तकी कमी नहीं रहती, तो आराम करनेवाले क्षयके बीमारको तो अुसकी बिलकुल ही कमी या तगी न रहनी चाहिये। अुसे अेक हाथमें घड़ी रखकर दूसरे हाथसे जल्दी-जल्दी भकोसनेकी कोअी जरूरत नहीं। यह तो है नहीं कि बम्बअीके अुपनगर-वालोंकी तरह अुसे झटपट खाकर रेलगाड़ीके लिअे दौडना पडता हो।

क्षयके अिलाजकी सफलताका आधार बहुत-कुछ नियमपालन पर है, और आहारके बारेमें नियमकी सख्त जरूरत है। थोडा-थोड़ा करके बार-बार खानेकी अिच्छा हो सकती है, लेकिन अुसे हमेशा रोकना चाहिये। पेटको आराम देना चाहिये। दिनभर पेटमें कुछ न कुछ डालते रहनेसे पेटका यंत्र भी थक जाता है और आखिर बेकार हो जाता है। कारखानोंकी कलोंको आराम दिया जाता है, रेलगाडीके अिंजनको भी कुछ मीलोंकी यात्राके बाद आराम दिया जाता है, घोडेको भी आराम मिलता है, लेकिन लोग अकसर यह भूल जाते हैं कि पेटको भी आरामकी जरूरत रहती है। क्षयरोगीको अैसी भूल न करनी चाहिये। अुसे रोज ठीक समय पर ही खाना खा लेना चाहिये और भोजनसे पहले व भोजनके बाद आध घण्टा आराम करना चाहिये। अिससे भूख बढ़ती है और हाजमा ठीक होता है।

अगर दिनमें दो बार भोजन किया जाय और दो-तीन बार दूध लिया जाय, तो आम तौर पर बीमारको भरपूर खुराक मिल जाती है।

जाड़ोंमें भूख ज्यादा और अच्छी लगती है, गरमियोंमें भूख कम हो जाती है। सुबह-सुबह दूध, दुपहरसे पहले भोजन, दुपहरको दूध, साँझको भोजन और रातको दूध लिया जाय, तो भोजनका क्रम सब मिलाकर बहुत-कुछ संतोषजनक हो जाता है। लेकिन हरअेक बीमारको अेक ही क्रम माफिक नहीं आता, जब जैसी जरूरत हो, अुसमें हेर-फेर कर लेना चाहिये। पश्चिमके सर्द देशोंकी तरह भरी दुपहरीमें, जबकि हमारे यहाँ ज्यादासे ज्यादा गरमी पड़ती है, भोजन करनेकी प्रथाको अपनानेसे हमें तो नुकसान ही होता है।

शरीरके अन्दर कअी अवयव हैं: हृदय,[1] फुफ्फुस,[2] प्लीहा,[3] यकृत,[4] वग़ैरा। ये सब अवयव बहुत ही सूक्ष्म तन्तुओंके बने होते हैं। यंत्रके अपने अलग-अलग हिस्से रहते हैं। लगातार अुपयोगसे जब ये हिस्से घिस जाते हैं, तो अिन्हें निकालकर नये बैठाने पड़ते हैं। अिसी तरह शरीरके अंदर भी अवयवोंके जो तन्तु लगातार अुपयोगसे घिसते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं और अुनकी जगह नये तन्तु बनते हैं। शरीरके अंदर यह क्रिया रात-दिन होती रहती है और अिसके लिअे पोषण आवश्यक है। अिंजन-जैसे यन्त्रको तैयार करके चलानेके लिअे कोयला, पानी और आगकी जरूरत रहती है, शरीरको भी अुष्ण पदार्थोंकी और मेद या चरबीकी ज़रूरत रहती है। अन्नके ज़रिये शरीरको सब तरहके पोषक द्रव्य, अुष्ण द्रव्य, चरबी और कअी तरहके क्षार मिला करते हैं। शरीरको पानीकी जरूरत रहती है और ताकत पहुँचानेवाले तत्त्वोंकी भी जरूरत रहती है। अंग्रेजीमें ये तत्त्व विटामिन कहलाते हैं। जब अन्नमें पोषक द्रव्य होते हैं, पर विटामिन नहीं होते, तो शरीर कमजोर हो जाता है। ये सभी द्रव्य या पदार्थ मनुष्यके खाने-पीनेकी चीज़ोंमें अलग-अलग मात्रामें पाये जाते हैं। गेहूँ, चावल, जुवार, बाजरी, अरहर वगैरामें, जो हमारे खानेकी चीजें हैं, ये तत्त्व रहते हैं। द्विदलमें भी ये पाये जाते हैं, लेकिन अुनमें

१ दिल; २. फेफड़े; ३. तिल्ली; ४. जिगर।

गेहूँ, चावल वगैराकी अपेक्षा न पचनेवाले अंश ज्यादा होते हैं और अिसीलिअे अुन्हें पचाना अकसर मुश्किल हो जाता है। हमारे आहारमें आम तौर पर जो चीजें भारी यानी देरमे हजम होनेवाली या ज्यादा गरम मानी जाती हैं, क्षयके बीमारको अुनका अुपयोग कम करना चाहिये। केवल जीभके स्वादको संतुष्ट करनेके लिअे जठराग्निको कमजोर बनानेवाली या बदहजमी पैदा करनेवाली चीजें खानेमें कोअी लाभ नहीं। नाजमें गेहूँ अेक अुत्तम नाज है; क्षयरोगीके आहारमे अिसकी मात्रा मुख्य होनी चाहिये। लेकिन बड़ी-बड़ी पनचक्कियोंमें पिसे हुअे बाजारू आटेका कभी अिस्तेमाल न करना चाहिये। बाजारके आटेको ज्यादा वक्त तक टिकाने और सडनेसे बचानेके लिअे अुसका सारा रस व कस निकाल डाला जाता है, और अिस तरहका बेकस आटा शरीरका निर्माण करनेमें निकम्मा होता है।

नाजकी तरह ताज़ी साग-सब्जी भी आवश्यक है। अुनसे विटामिन ज्यादा मिलता है। अगर छातीमें कफ ठँस न गया हो या अैसे ही दूसरे कोअी कारण न हों, तो बिना खटाअीवाले ताजे फल भी खाये जा सकते हैं।

ताजी हवाकी तरह खानेकी चीजें भी हमेशा ताजी होनी चाहियें। बासी अन्न और बासी साग-सब्जीसे शरीरकी ताजगी और स्फूर्ति नहीं बढ़ाअी जा सकती। अिसी तरह बहुत ठंडा या बहुत गरम आहार भी निरुपयोगी है।

खाँसी पैदा करने या बढानेवाली चीजका त्याग करना चाहिये। क्षयके बीमारको आरामके जरिये जो लाभ मिलता है, वह खाँसीके बढ़ जानेसे फिर अुतना नहीं मिल पाता। खाँसी फेफड़ोंके लिअे अेक तरहकी सख्त कसरत हो जाती है। अुसे जान-बूझकर बढ़ाना अुचित नहीं। अिसके लिअे तेल, मिर्च और सुपारी वगैराका खास तौर पर त्याग करना चाहिये और खटाअी भी छोडनी चाहिये।

नाज और साग-सब्जी जरूरी हैं, लेकिन अुनसे भी ज्यादा जरूरी दूध, घी और मक्खन हैं। बिना अिनके खुराकमें कोअी सत्त्व नहीं रहता। ये चीजें भी मर्यादामें रहकर खानी चाहियें — अितनी न खा लेनी चाहियें कि बदहजमी हो जाय। वैसे, आगसे शरीर गरमाता है, लेकिन आगके कुण्डमें बैठ जानेसे तो खाक हो जाना पडता है।

दूधको अुबालनेसे वह भारी हो जाता है, अुसके पोषक द्रव्य जल जाते हैं या घट जाते हैं। ठण्डे दूधको सीधे चूल्हे पर चढाकर अुबालनेके बजाय दूधके ढँके हुअे बरतनको चूल्हे पर अुबलते हुअे पानीके बरतनमें चंद मिनट रखकर दूध तपा लिया जाय और फिर अुसे तुरन्त ही ठण्डा कर लिया जाय, तो अुसके स्वाद व शक्तिमें कमसे कम कमी होती है और विजातीय द्रव्य सब नष्ट हो जाते हैं। दूधको बार-बार गरम करनेसे अुसका सत्त्व जल जाता है, अिसलिअे अुसे दुबारा चूल्हे पर न चढाना चाहिये। अुसकी ठण्ड अुडानेके लिअे दूधके बरतनको अुबलते पानीमें रखना चाहिये। अिसमें दूध आवश्यकतानुसार गरम हो जाता है और अुसके पोषक द्रव्योंको कमसे कम नुकसान पहुँचता है।

मक्खनका पूरा लाभ तभी मिलता है, जब वह घर पर रोज-रोज ताजा बना लिया जाता है। बाजारका और खासकर डब्बेका मक्खन किसी कामका नहीं होता।

चाय-कॉफी वगैराका अुपयोग जितना कम किया जाय, अुतना ही अच्छा है। तेज या कडी चाय व कॉफीका तो त्याग ही करना चाहिये। चाय-कॉफीसे पाचनशक्ति मन्द पडती है। अन्नके साथ ये चीजें न लेनी चाहियें। अिसी तरह भोजनके साथ सादा पानी भी न पीना अिष्ट है। तम्बाकू और बीडीका भी त्याग करना चाहिये।

यह सवाल बार-बार अुठता है कि क्षयके बीमारको स्वस्थ होनेके लिअे मांसाहारी बननेकी जरूरत है या नहीं, अथवा मांसाहारी बने बिना अच्छा हुआ जा सकता है या नहीं? जिन देशोंमें लोग आम तौर पर

मांस खाते हैं, वहाँ भी मांसका त्याग करनेवाले लोग हैं। अिसलिअे वहाँ वालोंने भी अिस सवाल पर विचार किया है।

मांसाहारमें क्षयको वशमें करनेका कोअी चमत्कार नहीं है। विना आरामके क्षय अच्छा नहीं होता; लेकिन मांसाहारमें अैसा कोअी गुण नहीं है। अिस सम्बन्धमें वाईसवेलकी राय यह है कि जिनको मांसाहारके वारेमें दिली अेतराज है, वे अुसके विना भी अकेले अनाजसे अपना काम चला सकते हैं और 'क्षय-सागर' के पार अुतर सकते हैं। क्षयरोगके अिलाजका मतलव है, रोगीकी दिनचर्याको सुव्यवस्थित वनाना। अिसके लिअे रोगीके पूर्व जीवनकी दिनचर्यामें मात्र आवश्यक परिवर्तन ही किया जाय, तो अुसके लिअे अुस परिवर्तनको अपनाना आसान हो जाता है।

जिस आहारसे तन्दुरुस्तीकी हालतमें शक्ति और पोषण मिलता है, क्षयरोगीके लिअे वह आहार काफी है। विना मांस खाये सशक्त और नीरोग रहनेके लिअे गेहूँ जैसे नाजकी, साग-सब्जीकी और दूध, घी व मक्खनकी जरूरत रहती है। वीमारीसे पहले लिये जानेवाले आहारमें जो त्रुटि या कमी होती है, अुसे मिटाने जितना परिवर्तन आवश्यक और अुपयोगी है। अगर वीमारीसे पहले रोगीको दूध न मिलता हो, या वह नियमित रूपसे साग-सब्जी न लेता हो, अथवा अुसकी खुराकमें गेहूँकी मात्रा कम हो, तो वीमारीके दिनोंमें अिसमें आवश्यक हेर-फेर कर लेना चाहिये। आजकल मांस खानेवालोंको भी गरम देशोंमें मांस कम खानेकी सलाह दी जाती है। रोलियर स्विट्जरलैण्ड जैसे ठण्डे देशमें सूर्यस्नानसे दूसरे रोगोंकी चिकित्सा करते समय मांसका कमसे कम अुपयोग कराता है और वहाँकी गरमियोंमें तो वह खास तौर पर नाजका ही आहार करनेकी सलाह देता है।

जिस वीमारको मांस खानेकी आदत नहीं है, अुसे मांस खानेके लिअे मजबूर करनेसे अुसकी मनोदशाका अनादर ही होता है। जिस तरह किसी वैज्ञानिककी प्रयोगशालामें पशु-पक्षियोंको अुनकी अिच्छाका

विचार किये बिना केवल प्रयोगके विचारमें खिलाया जाता है, अुसी तरह क्षयके बीमारको भी खिलानेकी कोशिश करनेमें बीमारको तक्लीफ होती है, और अिसमें तो कोअी शक नहीं कि अिसका नतीजा बुरा होता है।

आजकल क्षयका नाम लेते ही या अुसकी शका आते ही कॉडलिवर तेलका नाम सबसे पहले जबान पर आता है। अिसकी अुपयोगिता और आवश्यकता जरूरतसे ज्यादा मान ली गअी है। हमारे यहाँ यह अनिवार्य मान लिया गया है, जबकि पश्चिमी देशोंमें वैसा नहीं है। काड्लिवर तेलका हिमायती फाअुलर भी अुसके अुपयोगकी मर्यादाका जिक्र अिस तरह करता है "बुखारकी हालतमें या शामको जब तेज बुखार रहता हो और बदहजमी हो, तब यह तेल नहीं लेना चाहिये। अिसी तरह जो बीमार अिसे लेनेमें स्पष्ट अरुचि बतावे, अुसे अिसके लिअे मजबूर करनेमें बुद्धिमानी नहीं है। अथवा जिस बीमारको मतलीकी शिकायत हो या मांससे घिन मालूम होती हो, या जिसकी भूख कम हो गअी हो, अुसे तो यह 'हरगिज' न देना चाहिये। बुखारकी हालतमें अिस तेलका कोअी असर नहीं होता।" स्पष्ट है कि हमारे यहाँ कॉड्लिवर तेलके हिमायतियोंकी यह मर्यादा भी कअी बीमारोंके मामलेमें तोड़ दी जाती है। जिस तरह अिस विकट बीमारीकी चिकित्सा किसी अूँचे स्वास्थ्यप्रद प्रदेशमें न जाने पर भी बराबर हो सकती है, अुसी तरह अिस तेलके बिना भी अुसका काम बखूबी चल सकता है — कोअी खास नुकसान नहीं होता।

क्षयरोगीके लिअे घीके मुकाबले मक्खन ज्यादा अुपयोगी है। अुससे कॉड्लिवर तेलकी गरज पूरी होती है। मक्खन अिस तेलके मुकाबले ताजा होता है और तेलकी तरह ही वजन व ताकत बढ़ानेके काम आता है। क्षयके बीमारकी खुराकमें अिसको स्थान देना चाहिये। फिशबर्ग लिखता है: "अनुभवसे मुझे पता चला है कि हमारे कामके लिअे मक्खन अेक बढ़िया चीज है। अुससे कॉड्लिवर तेलके समान ही अच्छा नतीजा निकलता है।"

१४

वस्त्र

सभ्य जातियोंमें कपड़ोंके अुपयोगका रिवाज बहुत पुराना है। कपड़ोंका मुख्य अुपयोग शरीरको सजानेका है, या सरदी-गरमीसे अुसकी रक्षा करनेका, अिसकी चर्चाका यह स्थान नहीं। शरीर कितना ही कसा हुआ क्यों न हो, अगर अुसे भरपूर खुराक नहीं मिलती, तो वह सरदी बरदाश्त नहीं कर सकता। जब खानेको कम मिलता है, तो कपड़ोंकी ज्यादा जरूरत रहती है; और जब दोनोंकी कमी होती है, या जब दोनों भरपूर नहीं मिलते, तो दूसरे अुपायोंसे काम लेना पड़ता है। सरदीसे बचनेके लिअे अलाव जलाने या सिगड़ी तापनेका रिवाज सबका जाना हुआ है। अेक-दूसरेसे सटकर सोने और शरीरको गरम रखनेकी प्रथा भी प्रचलित है।

कपड़ोंका अपना अुपयोग है, लेकिन अुनका दुरुपयोग आसानीसे हो सकता है। बहुत ज्यादा कपड़े पहननेसे स्पष्ट ही नुकसान होता है। शरीरके आरोग्यका बहुत-कुछ आधार त्वचा पर और अुसकी क्रिया पर है। अन्न और श्रम वगैराके कारण शरीरमें जो अतिरिक्त गरमी पैदा होती है, वह त्वचा या चमड़ीकी राह बाहर निकलती है और यों शरीर हलका और हूँफवाला (गरम) रह पाता है। यदि त्वचाकी अिस क्रियामें बाधा पड़ती है, तो शरीर ठण्डा न रहकर गरम रहने लगता है। अिससे शरीरमें अेक तरहका भारीपन आ जाता है। शिथिलता मालूम होती है, और मन अुदासीसे भर जाता है। कपड़ोंके जरिये जिस तरह बाहरकी सरदीसे शरीरकी हिफाजत की जा सकती है, अुसी तरह अुनके दुरुपयोगसे शरीरमें जरूरतसे ज्यादा गरमी पैदा हो जाती है। कपड़ोंका अुपयोग कुछ अिस तरह होना चाहिये कि अुनके कारण बाहरकी सरदी शरीरको

ज्यादा सर्द न बना पाये और अन्दरकी गरमीसे वह ज्यादा गरम न हो पाये। बारहों महीने अेकसे कपड़े पहननेकी कोशिशसे नुकसान ही होता है। अिससे गरमियोंमें बेहद बेचैनी और जाड़ोंमें कड़ाकेकी ठण्ढ सहनेका मौका आता है। ऋतुके अनुसार कपड़ोंकी मात्रामें परिवर्तन करना लाजिमी है। बहुत ज्यादा कपड़े पहननेसे शरीरमें गरमी और नमीका अनुभव होता है। कम कपड़ोंसे शरीर ठिठुरता और रोमांचित होता है। ये दोनों तरीके गलत हैं। दरअसल शरीर शीतल रहना चाहिये।

जब हवा शरीरका स्पर्श करती है, तो अुससे शरीरको फायदा पहुँचता है। कपड़े जिस हद तक हवाको शरीरका स्पर्श करनेसे रोकते हैं, अुस हद तक शरीरको हवाका लाभ भी कम मिलता है। अगर बहुत ही गफ और मोटे कपड़ेकी पोशाक बनाअी जाय, तो अुसमें से हवाको आर-पार जानेका कमसे कम मौका मिलता है, और शरीरको ताज़ी हवाका स्पर्श भी कम ही मिलता है। जब कपड़ा पतला होता है और अुसकी बुनाअी गफ नहीं होती, तो अुसमें से हवा ज्यादा आती-जाती है और शरीरका अधिक स्पर्श कर पाती है। अिस दृष्टिसे गरमियोंमें शरीरको ज्यादा हवा पहुँचानेवाले और जाड़ोंमें अुसे गरम बनाये रखनेवाले और कम हवा लेनेवाले कपड़े अुपयोगी होते हैं।

शरीरको गरम रखनेकी वस्त्रोंकी शक्तिका आधार अुनके प्रकार पर निर्भर नहीं है, यानी अिस बात पर निर्भर नहीं है कि वस्त्र सूती हैं, अूनी हैं या पाट-जूटके हैं। अिसका आधार तो शरीर पर और कपड़े पर है — यानी कपड़ेकी बनावट पर और अिस बात पर है कि कपड़े-कपड़ेके बीचमें हवा कितनी अुलझी और भरी रहती है। अिस तरह घुसकर बैठी हुअी हवा बाहरकी हवाके मुकाबले ज्यादा गरम होती है, और जब तक वह बन्द और स्थिर रहती है, शरीरको गरमी मिला करती है। कपड़े शरीरकी गरमीको सोख नहीं सकते और शरीर ठण्डा नहीं होता। जाड़ोंमें अिस प्रकारकी बन्द हवा स्थिर नहीं रहती, बार-बार बदलती रहती है, अिसलिअे शरीरको ज्यादा सरदी मालूम होती है

और गरमियोंमें चूँकि यह बार-बार बदलती नहीं, अिसलिअे शरीर पसीजने लगता है। कपडे अितने चुस्त न होने चाहियें कि शरीरसे चिपक जायँ और जाडोंमें अितने ढीले न पहनने चाहियें कि वे हवामें फहराते रहें। जब पसीना आता है, तो सूती कपड़े बदनसे चिपक जाते हैं और शरीरको ठण्डक पहुँचाते हैं। अूनी या खुरदरा कपड़ा गीला होने पर भी न तो शरीरसे चिपकता है, न अुसे ठण्डक पहुँचाता है। बहुत ही मुलायम और गफ कपड़े और खास तौर पर कलफवाले व तडकीले-भडकीले कपड़े अच्छे नहीं माने जाते। अैसे कपड़ोंमें हवा आ-जा नहीं सकती। अिनके अुपयोगसे पसीना ज्यादा निकलता है और काम-काजमें रुकावट पैदा होती है।

हवाके गुणोंका लाभ शरीरको तभी मिलता है, जब हवा अुसका स्पर्श करती है। अिसलिअे कपड़ोंका अुपयोग अैसे ढंगसे किया जाना चाहिये कि जिससे हवा त्वचाको सरलताके साथ छू सके। जिस तरह बिना खिडकियों और दरवाजोंके घर निकम्मे होते हैं, अुसी तरह सिरसे पैर तक शरीरको वस्त्रसे ढँके रहना भी खराबी पैदा करता है। ऋतुके अनुसार शरीरके अधिकसे अधिक हिस्सेको अितना खुला रखना चाहिये कि हवाका स्पर्श आसानीसे हो सके। जिस तरह सरदी खा जानेके डरसे घरमें दरवाजों और खिड़कियोंकी संख्या कम रखना, या जो हैं अुनको कम खोलना ग़लत है, अुसी तरह पहनने और ओढ़नेके कपड़ोंका जरूरतसे ज्यादा अुपयोग अिस तरह तो हरगिज न होना चाहिये कि अुनको लेकर शरीरके आसपास अेक सन्दूक-सी बन जाय और अुसे हवाका स्पर्श भी न हो सके। पहनने और ओढ़नेके सभी कपडे शरीरको आराम पहुँचानेवाले, ढीले और हलके होने चाहियें।

क्षयके बीमारको हवासे ज्यादा लाभ अुठाना चाहिये। अुसे अपने पहनने और ओढ़नेके कपड़ोंकी तादाद पर खास ध्यान देना चाहिये। अच्छा तो यह है कि सोते समय पहनने और ओढ़नेके कपडोंका अुपयोग कम हो। अगर रातमें सरदीके अचानक बढ़नेकी सम्भावना हो, तो अुसके

लिअे अेकाध रजाअी वगैरा पैताने ज़्यादा रखी जा सकती है, ताकि जरूरत मालूम होते ही ओढ़ ली जा सके। और अगर रातमें अुठना पडे, तो अुस समय पहननेके लिअे पास ही अेकाध कपडा भी रख लिया जा सकता है, ताकि सरदी खानेका कोअी डर न रहे। ओढ़ने और पहननेके लिअे बहुत ज़्यादा कपडोंका अुपयोग करनेसे शरीर खूब गरम हो जाता है और अिस तरह गरम शरीरको जब सर्द हवा लग जाती है, तो जुकामका खतरा खड़ा हो जाता है।

१५

ज्वर

सब प्रकारकी बीमारियोंमें प्राय. ज्वरका लक्षण प्रधान माना जाता है। जब तक बुखार नहीं आता अथवा वह अुग्र रूप धारण नहीं करता, रोगकी गभीरता कम मानी जाती है। और बुखारके नष्ट होने पर रोग नष्ट हुआ अथवा वशमें आया समझा जाता है। क्षयरोगके भी अनेक प्रकट लक्षणोंमें ज्वरका लक्षण मुख्य माना जाता है। अुसके बलाबल और प्रकार परसे क्षयके बलाबलका विचार किया जाता है, रोगीके भविष्यका अनुमान लगाया जाता है और चिकित्साकी पद्धति निश्चित की जाती है।

ज्वर रोगका कारण नहीं, किन्तु रोगका परिणाम है। यों शरीरके अन्दर गरमी तो अेक निश्चित मात्रामें सदा ही रहती है। लेकिन खाना खाने पर, परिश्रम या मेहनतके काम करने पर, अथवा क्रोध आदि आवेगोंके कारण ज्ञानतन्तुओंके अुत्तेजित हो जाने पर या अैसे ही अन्य कारणोंसे शरीरकी गरमी कुछ बढ जाती है। आम तौर पर अिस प्रकारके नैमित्तिक कारणोंसे अुत्पन्न होनेवाली गरमी कुछ ही देर रहती है, कुछ समय बाद वह कम हो जाती है और शरीर पहलेकी तरह समशीतोष्ण

वन जाता है। स्वस्थ मनुष्यके शरीरमें जितनी गरमी हमेशा पाअी जाती है, वह क्षणिक कारणोंसे रात-दिन अमुक अेक मर्यादामें घटती-बढ़ती रहती है। लेकिन जब यह वृद्धि मर्यादासे बाहर हो जाती है और अधिक समय तक बनी रहती है, तो माना जाता है कि शरीरके अन्दर कोअी खराबी पैदा हो गअी है। अिस खराबीके कारण शरीरमें जो गरमी मालूम होती है, वही ज्वर कहलाती है।

गरमी मापनेका यंत्र थर्मामीटर कहलाता है। जो यंत्र हमारे देशमें प्रचलित है, अुसमें २१२ अंश (डिग्री) होते हैं, और प्रत्येक अंशके दस बिन्दु या पॉअिण्ट माने जाते हैं। पानी ३२ डिग्री पर जमकर बर्फ बन जाता है और २१२ डिग्री पर खौलने लगता है। मनुष्यके शरीरकी गरमी ९५ डिग्रीसे कम और ११० डिग्रीसे अधिक शायद ही कभी होती है। अिसलिअे शरीरकी गरमी मापनेके लिअे जो थर्मामीटर काममें आता है, अुसमें ९५ से ११० डिग्री तकके ही चिन्ह रहते हैं। थर्मामीटर पर डिग्रीकी सूचक कुछ मोटी खड़ी लकीरें बनी रहती हैं और दो मोटी लकीरोंके बीच चार पतली रेखाअें रहती हैं, जो डिग्रीके दो-दो बिन्दु या पॉअिण्टकी सूचक होती हैं। थर्मामीटरके अेक सिरे पर अतिशय पतले काँचकी नलीमें पारा भरा रहता है। गरमी पाकर यह पारा फैलता है। फैलनेके लिअे यंत्रमें अेक ही मार्ग होता है। पारा अिसी मार्गसे आगे बढ़ता है। जैसा कि अूपर कहा जा चुका है, अिस मार्ग पर अंश और बिन्दु यानी डिग्री और पॉअिण्टकी सूचक मोटी-पतली रेखाअें बनी रहती हैं। पारा जिस रेखाके सामने आकर रुक जाता है, अुस रेखा परसे शरीरकी गरमीका निर्णय किया जाता है। अिस तरह आगेको चढ़ा हुआ पारा फिर अपने आप नीचे नहीं अुतरता। अुसे अुतारनेके लिअे थर्मामीटरको झटकेके साथ हिलाना पड़ता है। गरमी मापनेसे पहले हर बार यह देख लेना चाहिये कि पारा ९५ डिग्रीसे नीचे है या नहीं; अगर न हो तो अुसे नीचे ले आना चाहिये।

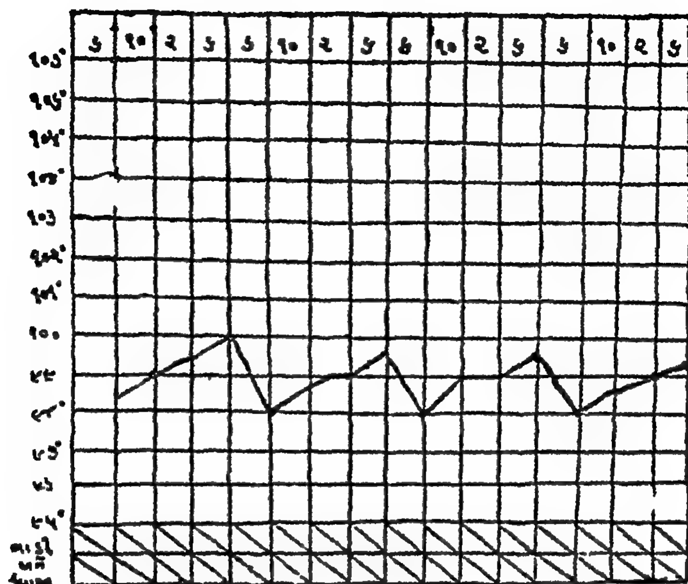
थर्मामीटरका अुपयोग करनेके अनेक तरीके हैं। हमारे यहाँ अधिकतर थर्मामीटरको बगलमें दबाकर गरमी मापनेका रिवाज है, लेकिन अिससे गरमीका ठीक-ठीक खयाल नहीं आता। अिस तरीकेमें पारा कमसे कम चढ़ता है, और चूँकि क्षयरोगीके अिलाजमें तो डिग्री-आधी डिग्रीका फर्क भी महत्त्वका माना जाता है, अिसलिअे अिस तरीके पर विश्वास रखनेसे प्रायः भ्रम पैदा हो जाता है और कभी-कभी व्यर्थ ही संकटका सामना करनेकी नौबत आ जाती है। यदि थर्मामीटर रखते समय बगलमें पसीना हुआ, या दुर्बलताके कारण थर्मामीटरकी नलीका शरीरकी चमड़ीसे पूरा-पूरा स्पर्श न हो पाया, अथवा पहना हुआ कपड़ा बीचमें आ गया, तो पारा पूरी तरह नहीं चढ़ता। थर्मामीटरको बार-बार बगलमें लगाना भी कठिन होता है और अुसे देर तक दबाये रखनेसे तकलीफ भी होती है। विदेशोंमें अिस तरीकेसे बुखार देखनेका रिवाज नहीं है। क्षयके आरंभमें हर रोज चार-चार बार बुखार नापना आवश्यक होता है, और चूँकि पारा मिनट-आधे मिनटमें पूरी तरह चढ़ता नहीं, अिसलिअे रोगीको पाँच-पाँच, दस-दस मिनट तक थर्मामीटर बगलमें दबाये रहना पड़ता है। अैसी दशामें यदि गर्मी अुसमें दिक आ जाय और चढ़ जाय तो ताज्जुब नहीं। जब अिसी तरीकेसे बुखार देखनेका आग्रह रखा जाता है, तो प्राय थर्मामीटरके बगलमें पूरी तरह न दबनेके कारण बुखारका झूठा अंदाज मिलता है।

बुखार देखनेका सबसे अच्छा और अनुकूल तरीका तो यह है कि थर्मामीटरके पारेकी नली जबानके नीचे दबाकर रखी जाय। नलीको जीभके नीचे दबाकर अूपरसे दोनों होंठ पाँच मिनट तक बंद रखनेसे हमें अपने कामके लिअे बुखारका सही-सही अंदाज मिल जाता है। अिस तरीकेसे बुखार देखनेवालोंको कुछ बातें ध्यानमें रखनी चाहिये। बुखार देखनेसे पहले 10 मिनट तक न तो ठण्डा या गरम कोअी पदार्थ खाना-पीना चाहिये, न कुल्ले वगैरा करने चाहिये और न बोलना चाहिये। अिसी तरह मुँह अैसी जगह पर नहीं रखना चाहिये, जहाँ जोरकी हवा लगती हो। गरम या ठण्डी चाय

खाने या पीनेसे कुछ समयके लिअे गरमी वढ या घट जाती है । जव मुँह पर हवाके ज़ोरदार झकोरे लगते हैं या बोलनेका यत्न किया जाता है, तो अुससे भी मुँहकी गरमी कुछ कम हो जाती है। अगर आप गरम दूध या चाय पीकर तुरन्त गरमी मापेंगे, तो वुखार न होते हुअे भी थर्मामीटरका पारा १०० डिग्री तक चढ़ा नजर आयेगा । अिसी तरह ठण्ढा पानी पीकर तुरन्त थर्मामीटरका अुपयोग किया जाय, तो पारा कम चढ़ेगा और शरीरकी गरमीका ठीक अन्दाज़ नहीं लग सकेगा । अिसलिअे शरीरकी गरमीका सच्चा माप जाननेके लिअे अिन दोषोंसे बचनेकी सावधानी अवश्य रखनी चाहिये ।

वुखार देखनेका तरीका हमेशा अेक ही रखना चाहिये, ताकि घट-वढका ठीक अदाज रह सके । रोज़-रोजके वुख़ारका लेखा भी रखना चाहिये । अिस लेखे या नोंधसे डॉक्टरको अिलाज करनेमें मदद मिलती है और रोगीके भविष्यका कुछ अंदाज भी किया जा सकता है । लेखा रखनेका अेक अच्छा तरीका अिसके साथके अेक चार्टमें समझाया है । चार्टमें आडी और खडी रेखाअें खींची हुअी हैं । आडी रेखासे वुखारका पता चलता है और खड़ीसे वुखारके समयका । जितना वुख़ार हो, अुतने वुख़ारवाली आड़ी लकीर जहाँ खड़ी लकीरसे मिले, वहाँ अेक विन्दु वना देना चाहिये और जव दो वारमें दो विन्दु अलग-अलग वन जायँ, तो अुन्हें अेक लकीरसे जोड देना चाहिये । अिस तरहकी लकीरों-वाले चार्ट वाजारमें तैयार मिलते हैं ।

प्रतिदिन वुख़ार देखनेका समय भी निश्चित होना चाहिये और रोज अुसी समय वुख़ार देखा जाना चाहिये । सुवह अुठते ही, दुपहरमें १२ वजे, शामको ५ वजे और रातको ९ वजे वुख़ार देख लेना चाहिये । यह सिलसिला तभी तकके लिअे है, जव तक वुख़ारका जोर रहे । जव वुखार कम हो जाय, तो फिर सुवह-शाम दो वार देखनेसे भी काम चलता है । लगानेके वाद थर्मामीटरको धोकर अुसके 'केस' में रख



देना चाहिये । अुसको हमेशा ठण्डे पानीसे ही धोना चाहिये । गरम पानीसे धोनेमें पारेके खूब चढ़ जाने और थर्मामीटरके तड़क जानेका डर रहता है ।

लम्बी मुद्दतके आरामके बाद फिरसे परिश्रम शुरू करनेका आधार खासकर थर्मामीटर पर ही रखा जाता है । अेक बार परिश्रम शुरू कर देनेके बाद फिरसे बीमार पड़ने और निराश होनेकी नौबत न आये, अिसके लिअे यह जरूरी है कि बुखार बराबर सावधानीके साथ व नियमित देखा जाय ।

शरीरकी गरमीमें घट-बढ़ होते रहना शारीरिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे आवश्यक है । यदि स्वस्थ मनुष्य भी दो-दो घण्टोंमें थर्मामीटरका अुपयोग करे, तो पता चलेगा कि अुसके शरीरकी गरमीमें भी सुबहसे शाम तक हेर-फेर होता रहता है । जो लोग यह मानते हैं कि स्वस्थ अवस्थामें शरीरकी गरमी ९८·४ डिग्रीसे कम या ज्यादा नहीं होनी

चाहिये; अुनका यह खयाल ठीक नहीं है। तन्दुरुस्त आदमीके शरीरकी गरमी दिनमें ९७ और ९९ डिग्रीके बीच रहती है। आरामकी हालतमें जब तक गरमी अिस मर्यादाके अन्दर रहती है और ९८.८ से अधिक नहीं बढ़ती, तब तक अुसे बुखार नहीं माना जाता। जब शरीर संपूर्ण आरामकी स्थितिमें होता है, और खासकर नींदमें होता है, तब गरमी कमसे कम रहती है। सुबह जागनेके बाद तुरन्त ही देखने पर गरमी ९७ और ९८ के बीच मालूम पड़ेगी; यह हुआ सुबहका 'नॉर्मल टेम्परेचर'। शामको आध घण्टेके आरामके बाद गरमी मालूम की जाय, तो वह ९८ और ९९ के बीच मिलेगी; यह हुआ शामका अथवा साधारण कामकाजकी स्वस्थ अवस्थाका 'नॉर्मल टेम्परेचर'। अगर सुबह अुठते ही गरमी ९८.२ या अिससे भी ज्यादा रहती हो और शामके समय आध घण्टेके आरामके बाद ९९ या अुससे ज्यादा रहती हो, तो समझना चाहिये कि दोनों समयकी यह अवस्था अस्वस्थताकी सूचक है। अगर यह हालत कअी दिनों तक बनी रहे, तो यह अंदाज किया जाता है कि शरीरमें कोअी खराबी पैदा हो रही है।

क्षयकी बीमारीमें बुखार अेक महत्त्वका और मुख्य लक्षण माना जाता है, लेकिन रात-दिन अुसीमें मन लगाये रहने और अुसीकी चिन्ता किया करनेसे बुखारको बल मिलता है। चूँकि क्षयकी गति मंद होती है, अिसलिअे अुसके लक्षण भी क्रम-क्रमसे काबूमें आते हैं और धीरे-धीरे नष्ट होते हैं।

जब बदहजमी या कब्जकी शिकायत रहने लगती है, जुकाम बना रहता है, श्वासनलिकामें सूजन आ जाती है, मनको आघात पहुँचानेवाली घटनाअें घटती हैं, ज्ञानतन्तु अुत्तेजित रहते हैं, पहनने और ओढ़नेके कपड़ोंका जरूरतसे ज्यादा अुपयोग होता है और अैसे दूसरे कारण पैदा होते और बने रहते हैं, तो अुनका प्रभाव शरीरकी गरमी पर भी पड़ता है — गरमी कुछ बढ़ी नजर आती है। औरोंकी तरह क्षयके बीमारको भी दूसरी छोटी-मोटी बीमारियाँ होती-रहती हैं, और अुनके कारण भी बुखार

बढ़ती पर दिखाअी देता है। पश्चिमी देशोंके 'सैनेटोरियमों' में बीमारोंके रिश्तेदार और अिष्ट-मित्र अुनसे किसी निश्चित दिन ही मिल पाते हैं और अुस दिन रोगियोंका बुखार कुछ बढ़ा नजर आता है, जो अिस बातका सूचक है कि रोगके सिवा दूसरे कारणोंका भी बुखार पर असर पड़ता है। अिसलिअे जब थर्मामीटरमें बुखार कुछ ज्यादा मालूम पड़े, तो तुरन्त ही यह मान लेना जरूरी नहीं कि रोग बढ़ गया है। अगर बाहरी कारणोंको बुखार पर असर डालनेका मौका न दिया जाय, और बीमारीके दरमियान शान्ति व धीरजसे काम लिया जाय, तो बारीक बुखारके जल्दी दूर हो जानेकी पूरी संभावना रहती है।

जब तक बुखार रहे, क्षयके बीमारको आराम करना चाहिये और जब बुखार दूर हो जाय, तो आराम कुछ कम करके धीरे-धीरे कसरतका क्रम बढ़ाना चाहिये। जब तक सवेरे गरमी ९८ डिग्रीसे अूपर और शामको ९९ से अूपर रहे, तब तक क्षयके बीमारको, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पूरा-पूरा आराम करना चाहिये। स्त्रियोंमें मासिक धर्मसे पहलेके दस दिनोंमें आम तौर पर शरीरकी गरमी छह पॉअिन्ट तक बढ़ जाती है। अिसलिअे अुन दिनोंकी यह बढ़ी हुअी गरमी रोगके कारण बढ़ी हुअी नहीं मानी जाती। जब थर्मामीटरका पारा सुबह ९८·२ डिग्री तक और शामको ९९·२ डिग्री तक पहुँचता हो, तब किसी प्रकारका श्रम या व्यायाम नहीं करना चाहिये। ९९ डिग्री भी शंकास्पद स्थितिकी सूचक होती है, अिसलिअे अच्छा तो यह है कि जब अितनी गरमी हो, तब श्रम न किया जाय। यह नियम हितकारी है। अिसकी अवगणना करनेसे अकस्मात संकट अुपस्थित होनेका डर रहता है। अिस तरहके सूक्ष्म या बारीक बुखारको तुच्छ समझकर लापरवाहीसे काम लिया जाय, तो अन्तमें निराश होनेकी नौबत आ सकती है। दूसरे लोग अिस तरहके बुखारमें असावधान रहें, तो संभव है कि अुन्हें ज्यादा तकलीफ न अुठानी पड़े। लेकिन अगर क्षयका बीमार भी अुन्हींके रास्ते चलनेका साहस करे, तो मुमकिन है कि वह फिरसे रोगके तूफानमें फँस जाय। ज्वरका कम

होना रोगके जोरकी कमी बताता है, लेकिन अुसका मतलब यह नहीं कि रोग मिट गया। अगर क्षयके बीमारकी गरमी रोजकी मामूली गरमीसे थोड़ी भी ज्यादा मालूम पड़े, तो अुसे आराम करना चाहिये और श्रमसे बचना चाहिये। अुकताहट और अधीरता बीमारके शत्रु और बीमारीके मित्र हैं। प्रायः लोग प्रेमवश लेकिन अज्ञानके कारण रोगीको आराम संबंधी नियमोंका अुल्लंघन करनेकी सलाह देते रहते हैं। रोगीके धैर्यकी यहीं परीक्षा होती है — अुसके फिरसे स्वस्थ होनेका सारा आधार अिसी पर है कि वह अैसी सलाहों पर ध्यान न दे।

अगर कभी बुखार अेक अर्से तक आधी या पाव डिग्री अधिक रहने लगे, तो अिस अधिकताके कारणका निर्णय किसी अनुभवी सलाहकारको ही करने देना चाहिये। बीमार खुद अिन अटपटी और बारीकीभरी बातोंका फैसला करने लगे, तो अुसका मन अुलझनमें पड़ जाय और वह अेकके बाद अेक गलतियाँ करने लगे। अुसके कर्तव्यकी सीमा नियमपालनमें समा जाती है।

१६

नाड़ी और श्वासोच्छ्वास

अूपर हम देख चुके हैं कि शरीरकी गरमी कअी कारणोंसे घटती-बदती रहती है, लेकिन अुससे भी ज्यादा घट-बद नाडीकी चालमें हुआ करती है। बडी अुम्रके आदमीकी नाडी अेक मिनिटमें ७२ बार फडकती है, लेकिन यह तभी होता है, जब आदमी बिलकुल स्वस्थ और आरामकी दशामें हो। क्षणिक और क्षुद्र कारण अुपस्थित होते ही नाडीकी गति बढ़ जाती है। अिसलिअे अगर नाडीकी गतिमें कारणवश १० से १५ तक वृद्धि हो जाती है, तो वह दोषसूचक नहीं मानी जाती। कसरत करने पर, खूब जोशमें आ जाने पर, घबराहटकी हालतमें या अैसे ही दूसरे कारणोंसे नाडीकी गति १५ से भी अधिक बढ़ जाती है। भोजनके बाद भी गति बढ़ती है। लेकिन चूँकि ये कारण क्षणस्थायी होते हैं, अिसलिअे बढ़ी हुअी गति भी कुछ ही देरमें कम हो जाती है।

लेकिन जब नाडीकी गतिमें स्थायी रूपसे वृद्धि हो जाती है, तो वह भी बुखारकी तरह क्षयका अेक लक्षण माना जाता है। क्षयके बीमारकी नाडी आम तौर पर ज़रा तेज़ चलती है। अगर अेक घण्टेके आरामके बाद भी नाड़ीकी गति फी मिनट ९० या अुससे अधिक रहे, तो बीमारको आराम करना चाहिये।

हाथके पहुँचेके पास अँगूठेके बादवाली अँगुलीकी सीधमें अेक बडी नस रहती है, जिस पर तीन अँगुलियाँ जरा अलग-अलग रखकर दबानेसे नाडीका पता चलता है। अिन अँगुलियोंको नस पर न तो खूब ज़ोरसे दबाना चाहिये और न बहुत हलके। नाडीकी गति जाननेके लिअे सेकण्ड (मिनटका ६०वाँ हिस्सा) के काँटेवाली घडीकी ज़रूरत होती है। नाडीकी धडकनोंको पूरे अेक मिनट तक गिनना चाहिये

और बुख़ारकी नोंधवाले तख़्ते पर नाड़ीकी गतिके खानेमें वह संख्या लिख देनी चाहिये । नाड़ीकी गति सुबह जागते ही मालूम करनी चाहिये । क्षयके अिलाजमें अिस समयकी गतिका महत्त्व सबसे ज़्यादा रहता है । अिसके अलावा जब-जब बुखार देखा जाता है, तब-तब नाड़ीकी गति भी देखी जाती है ।

नाडीकी गति परसे रोगीको अपने रोगके बलका अन्दाज़ लगानेकी कोशिश नहीं करनी चाहिये । अकसर देखा जाता है कि रोग विशेष प्रबल नहीं होता, किन्तु नाड़ीकी गति तेज़ होती है, और कुछ व्यायामशील, पहलवान जैसे बीमारोंकी नाड़ी धीमी चलती है । नाड़ी स्वभावसे अितनी चंचल होती है कि न कुछसे कारणको पाकर अुसका वेग बढ़ जाता है । अुसकी गति परसे किसी चीजका अन्दाज करनेमें अकसर भूल हो जाती है। और क्षय जैसी बीमारीमें किसी अेक ही लक्षण परसे, और सो भी नाड़ी जैसे चंचल लक्षण परसे, रोगका पूरा ज्ञान नहीं हो पाता । अगर बीमार नाडीकी गतिके संबंधमें मन ही मन व्यर्थका अूहापोह किया करे, तो अुससे गतिमें कोअी सुधार नहीं होता । अुलटे मनकी व्याकुलताके कारण नाड़ीका वेग बढ़ जानेकी संभावना रहती है ।

नाड़ीकी तरह ही श्वासोच्छ्वासमें घट-बढ़ होती रहती है । नीरोग अवस्थामें श्वासोच्छ्वासकी गति फी मिनट १८ होती है । नाड़ी और श्वासोच्छ्वासकी गतिका अनुपात ४:१ माना जाता है । लेकिन क्षयकी बीमारीमें यह अनुपात कायम नहीं रहता । पीठके बल लेटनेके बाद पेट पर हलका हाथ रखकर श्वासोच्छ्वास गिना जाता है । अिसके लिअे भी सेकण्डके काँटेवाली घड़ीकी ज़रूरत रहती है । गिनती पूरे अेक मिनट तक करनी चाहिये । साँस लेनेसे पेट फूलता है और साँस छोड़नेसे नीचे बैठता है । अेक मिनटमें पेट जितनी बार फूलता है, अुतनी ही श्वासोच्छ्वासकी गति मानी जाती है । श्वासोच्छ्वासकी गति भी आरामके बाद ही लेनी चाहिये ।

१७

शोष या क्षीणता

शोष क्षयका प्रसिद्ध लक्षण है। रोगके जाग्रत होते ही शरीर क्षीण होने लगता है और वजन घटता है। लेकिन जब अिलाजका असर होने लगता है, तो रोगका विष शरीरमें कम फैलता है, चरबी तथा मांसके ह्रासकी गति रुक जाती है और शरीर फिरसे हृष्टपुष्ट बनने लगता है। यह सुधार अिष्ट होते हुअे भी भ्रामक होता है। शरीरके वजनको बढ़ता देखकर रोगके दब जानेका अनुमान कर लेना ठीक नहीं। रोगकी जाग्रत अवस्थामें भी वजन बढ़ता है और शरीर पुष्ट होने लगता है।

मनुष्यके शरीरका वजन जड वस्तुके वजनकी तरह स्थिर नहीं होता। अेक मन पत्थरका वजन तो अेक ही मन रहता है, बशर्ते कि वह किसी तरह न घिसे। परन्तु मनुष्यके वजनमें अुसके जन्मसे ही क्रमिक वृद्धि होती रहती है, यदि परिस्थिति सब प्रकारसे अनुकूल रहे। मनुष्यके वजनका आधार अुसके कद और अुम्र पर रहता है। लेकिन अेक ही अूँचाअी और अुम्रके स्त्री-पुरुषोंके वजनमें फर्क पाया जाता है। स्त्रीका वजन पुरुषकी अपेक्षा कम होता है। मौसिमके मानसे वजनमें थोडी घट-बढ़ भी हुआ करती है। जाडोंमें वजन बढ़ता है, गरमियोंमें कम होता है। मनुष्यकी मनोदशाका भी अुसके वज़न पर असर पडता है। जिसने कहा कि 'हँसो और अलमस्त बनो' अुसने गलत नहीं कहा है। चिन्ता चिताकी तरह देहको जलाती है।

जिस किसी भी तरह वजन बढ़ाकर झटपट हृष्ट-पुष्ट बननेका प्रयत्न करनेसे बहुत नुकसान होता है। ज्यादा वजन बढ़ानेके लिअे ज्यादा खानेकी जरूरत होती है। लेकिन ज्यादा खानेसे कअी तरहकी

बुराअियाँ पैदा हो जाती हैं । क्षयके बीमारको अपनी पाचन-शक्तिकी मददसे पुनः स्वस्थ होना है; अिसलिअे अुसे अैसा कोअी काम न करना चाहिये, जिससे अुसका हाजमा बिगड़े या कमजोर हो । ठूँस-ठूँसकर खानेसे जो वजन बढ़ता है, वह कायम नहीं रह सकता । अगर चरबी बहुत ज्यादा बढ़ जाती है, तो अुससे हृदयको नुक्सान पहुँचनेका अँदेशा रहता है और साँस लेनेमें बार-बार रुकावट पैदा होती है, साँस जल्दी-जल्दी फूलने लगती है; और जब कसरत करनेका वक्त आता है, तो चरबीकी अधिकताके कारण न कसरत की जा सकती है और न ठीक-ठीक ताकत कमाअी जा सकती है । रोगके दब जाने पर भी शरीरको कसा नहीं जा सकता और वह थलथला ही रह जाता है । यह हालत किसी भी तरह चाहने लायक तो नहीं कही जा सकती ।

रोगकी स्थितिका विचार करनेमें बढ़ा हुआ वजन ज्यादा अुपयोगी नहीं होता । रोगका ज्यादा अन्दाज तो अिस बातसे लगता है कि वजन घटता है या नहीं ।

अूँचाअी और अुम्रके हिसाबसे वजन कितना होना चाहिये, अिसके कअी कोष्टक प्रचलित हैं । अेक अन्दाज देनेके खयालसे वे काफ़ी अुपयोगी हैं । लेकिन अुनमें सूचित अंकोंके अनुसार वजन न रहे, तो सिर्फ अिसीलिअे चिन्ता करनेकी कोअी आवश्यकता नहीं । कोष्टकमें सूचित वजन बहुतोंके वजनका औसत निकालकर ठहराया जाता है, और औसत निकालनेमें कुछ लोगोंका वजन कोष्टकसे ज्यादा और कुछका कम होता है । कोष्टकके वजनसे कम वजनवाले आदमी भी हर तरह स्वस्थ और सशक्त पाये जाते हैं । जब तक शरीरकी हड्डियोंका ढाँचा — शरीरका अस्थि-पंजर — भलीभाँति आवृत्त रहता है, चमड़ी ढीली और झुर्रियोंवाली नहीं होती, छातीका हिस्सा अुभरा हुआ और चौड़ा तथा पेट बैठा या चिपका हुआ रहता है, तब तक वजनकी चिन्ता करना जरूरी नहीं होता ।

कोष्टकमें सूचित वज़नकी अपेक्षा बीमारीके पहलेका वजन बीमारीके बाद वजनमें होनेवाली कमी-बेशीका अन्दाज लगानेमें ज्यादा अुपयोगी होता है; लेकिन वह मालूम न हो, तो अुसके अभावमें अिलाजके असरको जानना असम्भव या मुश्किल नहीं रहता।

जब तक रोग अपने जोरमें हो और कमजोरी ज्यादा हो, तब तक रोगीको अपना वजन करानेकी तकलीफ न अुठानी चाहिये। अुस दशामें तो आराम ही चिकित्साका मुख्य अंग रहता है। अतअेव अुसमें बाधा पहुँचानेवाले किसी कामसे कोअी हेतु सिद्ध नहीं होता। लेकिन जब बुखारका जोर कम हो जाय और दूसरी कोअी तकलीफ या रुकावट न हो, तो हफ्तेमें अेक बार बीमारका वजन करा लेना अच्छा है। वजनका काँटा अेक ही रहे तो अच्छा। दो घड़ियोंकी तरह दो काँटे भी कभी अेकसे नहीं होते। कुल वजन जाननेकी अपेक्षा वजनमें घट-बढ़ कितनी हुअी है, यह जानना ज्यादा अुपयोगी है और अिसके लिअे हमेशा अेक ही काँटेका अुपयोग जरूरी है। काँटे भी कअी तरहके होते हैं। कमानीदार या स्प्रिंगवाले कांटे ज्यादा समय तक अच्छे नहीं रहते, कमानी पर हवाकी नमी और खासकर बारिशकी नमीका असर भी होता है और अिसकी वजहसे वजन कम या ज्यादा मालूम पड़ता है। अिसलिअे बेहतर तो यह है कि अैसे काँटोंका अुपयोग न किया जाय। तौल या वजनके लिअे तराजूका काँटा अच्छा माना जाता है। वज़नका समय भी अेक ही रहना चाहिये। जिस तरह वजन पर मौसिमका असर होता है, अुसी तरह रोज सुबह-शामके वजनमें भी थोड़ा फर्क रहता है। सुबह पेट हलका करनेके बाद वजन सबसे कम और शामको सबसे ज्यादा मालूम पड़ता है। भोजनसे पहले और भोजनके बादके वजनमें फर्क हो जाता है। कपड़ोंके कारण भी वजनमें अन्तर पड़ता है। वजन करते समय कमसे कम कपड़े पहनने चाहियें — जहाँ तक हो सके, अेक कपड़ा पहनना अच्छा है। वजनका सबसे अनुकूल समय सुबह शौचके बादका माना जाता है। अिस प्रकार सब तरहकी

खवरदारी रखनेके वाद भी कभी-कभी वज़नमें अनचीता फर्क मालूम होता है, लेकिन अुसे ज़्यादा महत्त्व देनेकी ज़रूरत नहीं। वजनमें अिस तरहकी आकस्मिक घटा-वढ़ी तो कुछ समय तक होती ही रहती है।

जव तक रोगी शय्यावश हो, वजन हर महीने दो पौण्ड या रतलके हिसावसे और जव चलने-फिरने लगे, तो तीन-चार रतलके हिसावसे वढ़ना चाहिये। अिस तरह वढ़े, तो सन्तोष मानना चाहिये। हर हफ्ते वजनमें असाधारण वृद्धिका होना हमेशा अिष्ट नहीं रहता। वजन भी अेक खास हद तक ही वढ़ता है। यह चाहना कि अिलाजके दरमियान वजन वरावर वढ़ता ही रहे, अज्ञानमूलक है। अगर रोगीका वजन हर हफ्ते अेक रतलके हिसावसे वढ़े, तो सालके अन्तमें ५२ रतल वजन वढ़ जायगा और दो रतलके हिसावसे वढ़े, तो १०४ रतल वढ़ेगा। अैसी दशामें रोगी मांस-मेदका अेक अैसा मोटा-सा पिण्ड वन जायेगा कि वह स्वयं अुससे घवराने लगेगा। वजनकी आवश्यकता है, लेकिन अुसकी हद होनी चाहिये। अिलाजका लक्ष्य वज़न नहीं, शक्ति वढ़ाना है। वजन और शक्ति दो विलकुल भिन्न चीज़ें हैं। शरीर वहुत वज़नदार न होने पर भी शक्तिशाली हो सकता है।

१८

क्षयके अन्य लक्षण

खाँसी : क्षयकी बीमारीमें खाँसी हमेशा पाअी जाती है । गला साफ करनेके लिअे खँखारनेसे लेकर समय-समय पर आनेवाले ठसके, हलकी खाँसी और रोगीको बेदम करनेवाली जोरकी खाँसी तकके सभी प्रकार अिसमें पाये जाते हैं । कुछ मामलोंमें रोगके पूरी तरह काबूमें आ जाने पर भी खाँसीका कुछ अंश बाकी रह जाता है, लेकिन अुससे रोगीको कोअी खास तकलीफ नहीं होती ।

खाँसीको हम अेक तरहकी कड़ी कसरत कह सकते हैं । अिसकी वजहसे फेफड़ोंको बहुत श्रम पहुँचता है, घावके भरनेमें रुकावट पैदा होती है और भरा हुआ घाव यदि कच्चा हुआ, तो अुसे नुकसान पहुँचता है । बीमार खाँसते-खाँसते सुस्त हो जाता है और अुसकी नाड़ीकी गति बढ़ जाती है । बुखार पर भी अिसका असर होता है । रोगकी शक्ति-अशक्तिके अनुसार खाँसीकी मात्रा घटती-बढ़ती रहती है । अिसी तरह जब हवामें कोअी आकस्मिक परिवर्तन होता है या ठण्डी और गरम चीजें अेकके बाद अेक खानेमें आ जाती है, या अैसे ही कोअी कारण पैदा हो जाते हैं, तो खाँसी शुरू होती है । खाँसी किसी भी वजहसे क्यों न पैदा हो, अुसे प्रयत्नपूर्वक रोकनेमें फायदा है ।

छातीमें पैदा होनेवाले कफ वगैरा पदार्थोंको बाहर निकालनेकी दृष्टिसे खाँसीका अपना अुपयोग है। लेकिन अिसके सिवा, खाँसी अपने आपमें निरुपयोगी और हानिकारक है । वह रोकी जा सकती है; मात्र अुसके लिअे प्रयत्न करना चाहिये । अगर रोगी अपने मनमें खाँसीको रोकनेका दृढ़ निश्चय कर ले, तो थोड़े समयमें वह दबाअी जा सकती है । झूठी खाँसीको रोकनेसे किसी तरहके नुकसानका कोअी डर नहीं— न अैसा डर रखनेकी जरूरत है । यह तो अनुभवसिद्ध बात है कि

खाँसी जितनी ज्यादा ली जाती है, अुतनी ज्यादा आती है। अगर अुसे रोकनेकी आदत ठीकसे पड़ जाय, तो कफको बाहर निकालनेके लिअे भी अुसकी जरूरत कम ही रहती है। श्वासनलिकाकी रचना ही अैसी है कि जब अुसमें कफ वगैरा कोअी प्रतिकूल या विजातीय द्रव्य अिकट्ठा होता है, तो वह अपने आप खिंचकर गलेकी तरफ आ जाता है और अनायास ही बाहर निकल जाता है। अिसलिअे गलेमें खाँसीकी खर-खराहट पैदा होने पर भी अुसके वश न होनेमें लाभ है।

खाँसीकी रोक अुपयोगी है, लेकिन अुसके लिअे मनोबलसे काम न लेकर अकारण औषधियोंकी शरण लेना, अेक बुराअीको मिटानेके लिअे दूसरी बुराअीको अपनाने जैसा है।

कफ : कुछ बीमारोंको सूखी खाँसी आती है, कुछको खाँसीके साथ कफ भी आता है। क्षयके बीमारका सारा कफ या बलग़म क्षयजन्य ही नहीं होता। जब श्वासनलिकामें या गलेमें सरदीका असर होता है, तो वहाँसे भी मवाद बहता है। अिसलिअे अकेले कफकी न्यूनाधिक मात्रा परसे किसी प्रकारकी कोअी अटकल लगाना निरर्थक है।

बलग़म या कफका आना वैसे अेक अच्छा चिन्ह है। जब रोग जोर पर होता है, तो घुली हुअी या कमजोर बनी हुअी ग्रंथियाँ धीमे-धीमे फेफड़ोंसे अलग होने लगती हैं और अिस क्रियामें अगर वे बलग़मके साथ बाहर निकल जाती हैं, तो वह अच्छा ही होता है। जब पेटमें मल-सचय हो जाता है, तो अुसे जुलाब वग़ैराके जरिये बाहर निकालनेकी कोशिश की जाती है और यह चाहा जाता है कि जुलाब सफल हो। अिसी तरह जब फेफड़ोंमें रोगके कारण कोअी खराबी पैदा होती है, तो अुसका बाहर निकल जाना ही अुचित माना जाता है। सड़ी-गली चीजें शरीरमें रहें, तो वहाँ अुनका कोअी अुपयोग नहीं, अुलटे वे शरीरके स्वस्थ अंगोंको नुकसान पहुँचाती हैं।

क्षयग्रंथियाँ सभी अेक साथ अेक ही अवस्थामें नहीं रहतीं। ग्रंथियाँ जैसे-जैसे कमजोर पड़कर क्रम-क्रमसे नष्ट होती जाती हैं, वैसे-

वैसे अुनका मवाद बाहर निकलता जाता है। जब अिस क्रियामें कमी-बेशी होती है, तो अुसके कारण कफकी मात्रामें भी कमी-बेशी हो सकती है — अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं। मौसिम या हवाके हेर-फेरसे भी कफकी मात्रा घटती-बढ़ती रहती है।

जब रोग अपने ज़ोरमें होता है, बलग़म बार-बार आता है। अैसी दशामें रोगी कभी-कभी अुकता जाता है और बलगमको थूकनेके बजाय वह अुसे निगल जाना ज़्यादा पसंद करता है — कुछको अिसकी आदत भी पड़ जाती है। लेकिन यह आदत किसी तरह भी अच्छी नहीं कही जा सकती। बलगमको निगलनेका मतलब है, पेटको पीकदान बना लेना। जब बलगम पेटमें जाता है, तो पाचनक्रियामें रुकावट पैदा होती है, यही नहीं, बल्कि आँतोंमें क्षयग्रंथियोंके बनने और वहाँ क्षय पैदा होनेकी पूरी-पूरी सम्भावना रहती है। जिस तरह मल-मूत्रका त्याग अेक खास स्थानमें ही किया जाता है, अुसी तरह बलग़मको भी पीकदानमें ही थूकना चाहिये। शरीरमें पैदा होनेवाले विकृत पदार्थोंको न तो शरीरमें रखा जा सकता है, न अुन्हें जहाँ-तहाँ फेंका ही जा सकता है। हमें यह कभी न भूलना चाहिये कि सफाअी न केवल आरोग्यका अुत्तम साधन है, बल्कि वह रोगकी चिकित्साका अेक महत्त्वपूर्ण अंग भी है।

जिस तरह खाँसीको रोकनेके लिअे दवाका अुपयोग करनेसे लाभके बदले हानिकी सभावना अधिक रहती है, अुसी तरह बलगमको रोकनेके लिअे दवाका अुपयोग करना हानिकारक है। कभी-कभी तबीयत अच्छी हो जानेके बाद भी खाँसीकी तरह बलगम आता रहता है। लेकिन अिससे घबरानेकी कोअी ज़रूरत नहीं। रोग पर विजय पाकर जब रोगी चलने-फिरने और कामकाज करने लगता है, तो भी बरसों तक अुसे कफ आता रहता है। लेकिन अुससे अुसे कोअी तकलीफ नहीं होती।

दम क्षयकी बीमारीमें साँसका फूलना या दमका झट-झट भर आना हमेशा क्षयके कारण ही नहीं होता। सर्दी हो जाने पर, रक्तका

दवाव वढ जाने पर, पेट फूल जाने पर, या पेटमें वायु अथवा मलका संचय हो जाने पर साँस लेनेमें थोड़ी-वहुत कठिनाअी होती है। रोगीके कमरेमें हवाके आने-जानेका रास्ता ठीक न हो, हवा जितनी चाहिये अुतनी चंचल न हो, या रोगीने जरूरतसे ज्यादा कपडे पहने या ओढ़े हों, तो अिन कारणोंसे भी अुसका जी घवराने लगता है। कभी-कभी रोगके कावूमें आ जाने पर भी रोगीको साँस लेनेमें तकलीफ मालूम होती है, लेकिन वह किसी खरावीकी सूचक नहीं। अकसर जव फेफड़ोंके घाव भरने लगते हैं और नये तन्तुओंमें तनाव पैदा होता है या शरीरमें चरवीका भाग वढ जाता है, तो साँसकी यह तकलीफ मालूम होती है। अिसलिअे जव साँस फूली रहे, तो सिर्फ अुस परसे यह अंदाज़ लगाना कि रोग वढ़ गया है या जोर पर है, मुनासिव नहीं।

स्वर-भेद: रोगके विषका प्रभाव कभी-कभी रोगीके स्वर (आवाज़) पर भी पड़ता है। वीमारकी आवाज मन्द या सुस्त, खरखरी और फटी-सी मालूम पडती है। कभी-कभी गलेमें क्षयग्रंथियाँ वनने लगती हैं और वहाँ रोग अपना काम करता नजर आता है। जव आवाजमें किसी भी प्रकारकी कोअी खरावी पैदा हो, तो अुसे मिटानेका सवसे अच्छा अुपाय मौन है। विना मौनके विगडी हुअी आवाज सुधरती नहीं और गलेका क्षय दूर होता नहीं। रोगवाले प्रदेशको आराम पहुँचानेके लिअे ही मौन रखा जाता है। अैसी दशामें दूसरोंके साथ आवश्यक वोल-चालका काम कागज या पट्टी पर लिखकर या अिशारोंसे किया जाता है। मौनसे फेफड़ोंको भी अनायास ही विशेष आराम मिलता है और रोग भी आसानीसे वशमें आ जाता है।

पीड़ा या दर्द: क्षय शरीरके अन्दर अेक लम्वे अरसे तक रहनेवाली वीमारी है। मगर शरीरको क्षीण करने, कमजोर वनाने और नाशकी ओर ले जानेकी अुसकी क्रियामें अत्याचारीके अत्याचार-सी पीडा नहीं होती। खाँसीसे जी आकुल-व्याकुल हो जाता है, वलगम थूकते-थूकते जी अुकता जाता है, कमजोरीके कारण मन परेशान रहता है,

रन्तु रोगीको असह्य वेदना नहीं सहनी पड़ती। जब तक रोग फेफड़ोंमें ी रहता है, कभी-कभी छातीमें या पीठमें दर्द मालूम होता है, लेकिन ह नाम-मात्रका, मद और चंचल या क्षणिक होता है। जब फेफड़ोंकी ह तक रोग अपना प्रभाव फैला चुकता है और प्लूरसी खड़ी हो जाती , तब भी जब तक वह फेफड़ोंकी अूपरी सतह तक रहती है, बहुत ीड़ा नहीं पहुँचाती। लेकिन जो प्लूरसी फेफड़ोंके निचले हिस्सेमें होती , वह अवश्य ही बहुत दु:खदायक होती है। अुसमें रह-रहकर पीड़ा की सह्य टीसें अुठा करती हैं, साँस-अुसाँस लेते समय, हँसने, बोलते, छींकते, ौर खाँसते समय बेहद तकलीफ होती है।

क्षयके फलस्वरूप छातीमें कभी-कभी न कुछसे कारणसे भी दर्द शुरू जाता है। थकावटके कारण, चिन्ताके कारण या मौसिमके थोड़े र-फेरके कारण, यह दर्द बार-बार अुठता है, लेकिन यह क्षणिक और र्बल होता है। अच्छे होनेके बाद भी कुछ बीमारोंकी यह हालत वर्षों क बनी रहती है। अिससे किसीको यह न मान लेना चाहिये कि ग अन्दर ही अन्दर बढ़ रहा है, या कि वह फिरसे अुठनेवाला है या ठ रहा है। क्षयके अच्छी तरह दब जाने पर भी अुसके कोअी-कोअी न्ह शरीरमें शेष रह ही जाते हैं। आग चीजोंको जला देती है, किन अुनकी राख बच रहती है। अुसी तरह क्षय भी यों कहनेको लकुल दब जाता है, मगर अुसके सभी चिन्ह नष्ट नहीं होते।

खूनकी कै: जब मुँहकी राह फेफड़ोंका खून बाहर आता है, रोगी बुरी तरह घबरा जाता है; लेकिन घबराना बेकार है। यह ोअी कानून नहीं कि क्षयके हरअेक बीमारको खून गिरना ही चाहिये। अी बीमार अंधेर-सबेर अच्छे होते हैं, लेकिन अुन्हें नामको भी खून हीं गिरा होता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि खून किसके गिरता और किसके नहीं गिरता। यह सोचना कि जब तक खून नहीं रता, रोगका जोर कम रहता है, या यह कि खून गिरनेसे रोग बढ़ ाता है, ठीक नहीं। अिसमें अतिशयोक्ति होती है। खूनके गिरनेसे

रोगकी गंभीरताका निर्णय नहीं किया जा सकता। यह कोअी चेतावनी नहीं है, और अिससे मौत भी शायद ही कभी होती है। क्षयमें खूनका आना अेक संयोग-मात्र है।

फेफड़ोंसे निकलनेवाले खूनका कोअी पैमाना तय नहीं। जब खून आने लगता है, तो कुछ बूँदोंसे लेकर कभी-कभी तोलो तक आता है। जिस तरह अिसका कोअी निश्चित पैमाना नहीं, अुसी तरह यह भी ठीक नहीं कि वह कितनी बार आयेगा और किस कारण आयेगा। जब खून थोडी मात्रामें गिरता है, तो अुससे सिर्फ अितना ही अुपयोगी अंदाज लगाया जा सकता है कि बीमारी क्षयकी है और वह जाग्रत है।

खून फेफड़ोंसे ही आता है या कहीं औरसे, अिसका निश्चय कर लेना चाहिये। पेटकी खराबीके कारण अकसर क्षयके बीमारका मुँह आ जाता है, मसूदे फूल जाते हैं। और जब किसी वजहसे अुन पर दबाव पड़ता है, तो अुनमें से खून बहने लगता है। यह खून फेफड़ोंका खून नहीं कहा जा सकता। अिसकी रोकके लिअे अलग अिलाज किया जाता है। पेटकी जिस बीमारीके कारण दाँत और मसूढ़ोंसे खून बहता है, अुस बीमारीका अिलाज होना चाहिये।

फेफड़ोंके खूनको रोकनेका अिलाज, जिसे बीमार खुद कर सकता है, अेक ही है। और वह है, पूरा-पूरा आराम। जब रोगी आराम नहीं करता, बल्कि मेहनत करता है, तो शरीरके अन्दर खून तेज़ीसे दौडता है, खूनका दबाव बढ़ता है और वह अधिक मात्रामें बाहर आने लगता है। लेकिन अकेले शरीरको आराममें रखनेसे भी काम नहीं चलता। शरीरके आराममें रहते हुअे भी अगर मन बेचैन और घबराया हुआ है, तो अुससे खूनकी दौड़ बढ़ सकती है और मुँहकी राह ज्यादा खून गिर सकता है। शरीरको पूरा-पूरा आराम देने, मनको शान्त रखने और धीरजसे काम लेने पर रोगी अधिकतर अपने रक्तको रोक सकता है। खून गिरनेकी हालतमें अुसे खाँसीको खास तौर पर दबाये रखना चाहिये।

खराब हाज़मा : क्षयकी बीमारी लम्बे अरसे तक कायम रहती है, अैसी हालतमें अिस या अुस वजहसे रोगीका हाजमा कमजोर पड जाय, तो कोअी अचरज नहीं। जब रोग जागता है, तो हाजमे पर अुसका असर पडने लगता है। यह भी नहीं कि रोगसे पहलेकी हालतमें हाजमा हमेशा निर्दोष और अच्छा ही रहता हो। अैसे विरले ही लोग होते हैं, जिनकी पाचनशक्ति हमेशा अच्छी रहती है। बहुतोंकी तो कामचलाअू ही होती है। अिसलिअे रोगके जागरण-कालमें यदि किसी समय पाचनशक्ति मन्द प्रतीत हो, तो चिन्ता नहीं करनी चाहिये। लेकिन चूँकि आखिर बीमारको अुसीके आधार पर अुस पार पहुँचना होता है, अिसलिअे अुसकी हिफाजतमें लापरवाही या गफलत तो न रहनी चाहिये। बीमारको कभी कब्जियत रहने लगती है, कभी पेटमें हवाका सचार होनेसे पेट फूल जाता है, कभी बदहजमी हो जाती है, और कभी दस्त लग जाते हैं। पूरी खबरदारी रखनेके बाद भी अगर ये सब खराबियाँ पैदा हो जायँ, तो बिना घबराये अिन्हें और अिनके कारणोंको दूर करनेके लिअे अनुभवीकी सलाहसे अुचित अिलाज करना चाहिये। अगर किसीको आलू खानेसे पेटमें हवाकी तकलीफ हो, तो अुसे आलू खाना छोड देना चाहिये। अगर दूध पीनेसे पेटमें गड़गडाहट-सी मालूम पडे, तो दूधमें सोंठ या दूसरी वातनाशक वस्तु डालकर दूध पीना चाहिये, आदि-आदि।

पाचनशक्तिकी रक्षाके लिअे नियत समय पर खाना-पीना और रुचि व भूखके अनुसार अुचित खुराक लेना चाहिये। स्वादके चक्करमें पडकर या झटपट तन्दुरुस्त हो जानेकी अिच्छासे खाने-पीनेमें किसी तरहकी ज्यादती न होने देनी चाहिये। अगर भोजनके समयसे पहले आध घण्टा आराम किया जाय — सो लिया जाय — तो और भी अच्छा। साथ ही अगर भोजनके बाद भी फिर अुतना ही आराम ले लिया जाय, तो रुचि और भूख दोनों अच्छी रहेंगी और पाचन भी ठीक होगा।

बीमार अपनी मनोदशाके जरिये अपने हाजमेको तेज़ या मन्द बना सकता है। जब मन अुल्लसित, आनंदित और निश्चित होता है, तो भूख और रुचि भी अच्छी मालूम होती है, अिसके विपरीत, जब मन अुद्विग्न और शोक या चिन्तामें डूबा रहता है, तो भूख मर जाती है।

'अगर आँगनमें कूचरेका ढेर पड़ा है, तो समझ लीजिये कि घरमें गन्दगी ज़रूर होगी।' अिसी तरह अगर दाँत और मुँह गन्दा है, तो पेट साफ नहीं रह सकता। दाँतोंकी पूरी-पूरी हिफाजत रखनी चाहिये। दाँतोंकी और मुँहकी खराबीसे पेट खराब होता है और पाचनशक्ति कमजोर पड जाती है। अेकका असर दूसरे पर होता है। अगर दाँतोंके मसूड़े फूले हुअे या सूजनवाले हो, जीभ मैली हो और मुँहसे बदबू आती हो, तो समझिये कि पेट साफ नहीं है। क्षयके बीमारको मुँहकी सफाअीका पूरा-पूरा खयाल रखना चाहिये।

खाँसनेकी अिच्छाको रोकनेसे लाभ होता है, जबकि मल-मूत्रके वेगको रोकनेसे नुकसान होता है; अिसलिअे अुन्हें कभी रोकना न चाहिये।

पेटमें दर्द हो और वह देर तक बना रहता हो, तो अुसकी अुपेक्षा न करनी चाहिये, बल्कि तुरन्त डॉक्टरका ध्यान अुस ओर दिलाना चाहिये।

पसीना क्षयके बीमारको कभी-कभी पसीनेकी शिकायत रहती है। जिन्हें पसीना आता है, अुन्हें वह अक्सर पिछली रातमें आता है, किसीको ज्यादा, किसीको कम। जब ज्यादा आता है, तो बीमार पसीनेसे तर हो जाता है, अुसके कपडे भीग जाते हैं। पसीनेका आना अेक तरहकी थकावटका चिन्ह है। जब रोगके कारण पसीना ज्यादा आता है, तो वह आराम करने और ताजी हवामें रहनेसे अकसर रुक जाता है। लेकिन कभी दफा पसीना रोगकी वजहसे अुतना नहीं आता, जितना रोगीकी कुछ आदतोंकी वजहसे आता है। जब रोगीके कमरेमें हवाके आने-जानेका पूरा प्रबन्ध नही होता, जब अुसके कमरेकी हवा

स्थिर रहती हैं और पहनने व ओढ़नेके कपड़े सर्दीके हिसाबसे नहीं, बल्कि सर्दी खा जानेके डरसे जरूरतसे ज्यादा काममें लाये जाते हैं, तो पसीना जरूर आता है। अिस पसीनेको रोकनेके लिअे अिसको पैदा करनेवाले बाहरी कारणोंकी रोक होनी चाहिये, पसीना आते ही अुसे पोंछ डालना चाहिये और गीले कपड़े फौरन बदल डालने चाहिये।

नींदका न आना : जीनेके लिअे नींद बहुत जरूरी है। बिना अुसके शरीर और मनकी थकावट दूर नहीं होती, क्षतिकी पूर्ति नहीं हो पाती और दुर्बलता अथवा क्षीणता बढ़ती है। अगर नींदका यह अभाव देर तक बना रहे, तो आदमी आकुल-व्याकुल हो जाता है। नींदका न आना क्षयका कोअी खास लक्षण नहीं। लेकिन बीमार अकसर अिसकी चिन्ता किया करता है। यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि किसके लिअे कितनी नींद काफी होती है। किसीको छह घण्टे बस होते हैं, और किसीके लिअे ९-१० घण्टोंकी नींद जरूरी होती है। नींदका ज्यादातर फायदा शुरूकी नींदसे मिलता है। शुरूकी नींद बहुत गाढ़ी होती है, अिस नींदके दरमियान शरीर और मनकी बहुत-कुछ थकावट दूर हो जाती है। नींदमें बाधा पहुँचानेवाले दो कारण मुख्य माने जाते हैं : पेटका भारीपन और मनकी हालत (वृत्ति)। जब पेट खाली होता है, तो नींद नहीं आती या कम आती है, ठीक यही हालत ठूँस-ठूँसकर खाने पर भी होती है। रात सोते समय खानेकी आदत न रखनी चाहिये। जब मन किन्हीं विचारोंमें अुलझ जाता है, तो नींद नहीं आती। अुत्तेजित मनको शान्त होनेमें देर लगती है। कायरता, चिन्ता, असंतोष, भय आदिके भाव मन पर सवारी करते हैं, तो वे नींदको अुड़ा देते हैं। लेकिन कभी-कभी अैसा भी होता है कि रोगी रातमें कुछ मिनटोंके लिअे दो-चार बार जागता है और अुसके मनमें यह खयाल रह जाता है कि रात अुसे ठीक नींद नहीं आअी। रातमें नींद अच्छी तरह आअी या नहीं, अिसे जाननेकी अेक आम कसौटी यह है कि सुबह जागने पर सुस्ती मालूम होती है या स्फूर्ति।

रात सोते समय चाय या कॉफी जैसे अुत्तेजक पदार्थ पीनेसे भी नींद खराब हो जाती है। अिसलिअे न तो रातमें ये चीज़ें पीनी चाहियें और न मनमें अशान्ति पैदा करनेवाले किसी काममें भाग लेना चाहिये — जैसे अुत्तेजक बातचीत, वाचन, विचार वगैरा। रातमें ९ बजते-बजते चिराग कम करके सो जानेका आग्रह रखा जाय, तो नींदमें कमसे कम बाधा पहुँचती है और शरीर व मनको आवश्यक आराम मिल जाता है।

पहनने और ओढ़नेके कपड़ोंका जरूरतसे ज्यादा अुपयोग करनेसे, पसीना आनेसे या अिस तरह सोनेसे कि जिसमें शरीरके अंग-प्रत्यंगको पूरी-पूरी आजादी और अवकाश न मिले, शरीरके कुछ अंग दबे रहें, और सोनेका तरीका ग़लत हो, तो नींदमें खलल पहुँच सकता है। रोगकी जाग्रतिके कारणसे नींद क्वचित् ही खराब होती है। खाँसीसे नींद अुचट सकती है; लेकिन झूठी खाँसीको रोकनेकी आदतसे यह कठिनाअी दूर हो जाती है। सिवा अिसके, अगर सोते समय अेक कटोरी भर गरम दूध पी लिया जाय, तो कफ घुलकर बाहर निकल आता है, खाँसी कम हो जाती है और नींद अच्छी आती है। नींदका सबसे सरल और सफल अुपाय तो यही है कि नींदकी चिन्ता ही न की जाय।

१९

सफ़ाअी

आरोग्यकी महत्ता तभी ध्यानमें आती है, जब आदमी तन्दुरुस्ती खोकर रोगका शिकार बनता है । अिसी तरह स्वच्छता या सफाअीकी सच्ची कीमत भी तभी मालूम होती है, जब सफाअीके बदले आदमी मैलेपनका या गन्दगीका अनुभव करता है । आरोग्यकी दृष्टिसे शरीर, मन, वस्त्र, आहार और निवासकी अन्तर्बाह्य स्वच्छता जितनी स्वस्थ मनुष्यके लिअे आवश्यक है, अुतनी ही बल्कि अुससे भी ज्यादा वह क्षयके रोगीके लिअे जरूरी है ।

स्वच्छताका महत्त्व हमारे ध्यानमें अुस समय बड़ी आसानीसे आ जाता है, जब हम देखते हैं कि अेक आदमी बेहद गन्दा है और दूसरा अुसके खिलाफ बहुत साफ-सुथरा है । गन्दा आदमी अपने बालोंकी कोअी फिकर नहीं लेता । बाल अुसके जैसे-तैसे जंगलकी तरह अुगे हुअे, रूखे और अुलझे रहते हैं, कानोंमें मैल भरा रहता है, आँखें कीचडवाली होती हैं, दाँत मैलसे भरे हुअे, साँस बदबूवाली, नाखून बढ़े हुअे और मैले, शरीर पर जहाँ-तहाँ — कानके पीछे, पैरोंमें — मैलकी तहें जमी हुअी, शरीर बदबूसे बसा हुआ, कपडोंमें सफाअी और सुघडताका नाम नहीं । अिस आदमीको देखकर मन अरुचिसे भर जाता है । अिसके खिलाफ अेक आदमी वह भी है, जिसका सिर साफ, बाल सुलझे और जमे हुअे, कान, नाक, आँखमें किसी तरहकी गन्दगी नहीं, दाँत दूधकी तरह सफेद, मुँहमें बदबूका नाम नहीं, नाखून कटे हुअे और साफ, शरीर स्नानसे शुद्ध और दुर्गंध रहित, शरीरके किसी भागमें मैलका कोअी निशान नहीं, कपड़े साफ और सुघडताके साथ पहने हुअे । अिस आदमीको देखकर मन पर कुछ और ही प्रभाव पडता है । शरीरको

साफ़ रखनेमें खर्चका सवाल नहीं अुठता। हमारे देशमें आचारको परम धर्म माना है, और वह सबके लिअे समान रूपसे आवश्यक है। अुसमें शरीरकी सफाअीके बारेमें बहुत कुछ कहा गया है और हमारे यहाँकी दिनचर्यामें अुसे महत्त्वका स्थान मिला है। आजकल अिस धर्मका व्यावहारिक रूप कहीं-कहीं अितना विकृत हो गया है कि अुसे देखकर हँसी आती है, लेकिन अुससे शौच या सफाअीका महत्त्व और अुसकी अुपयोगिता कम नहीं होती।

यह सोचना कि बीमारीके बिछौने पर पड़ा हुआ आदमी तो थोड़ी या नाममात्रकी सफाअीसे भी अपना काम चला सकता है, अेकदम गलत है। अगर बीमार खुद साफ न रहे, अुसका बिछौना गन्दा हो और अुसके आस-पास भी स्वच्छताका अभाव हो, तो न सिर्फ अुसे अपने आप पर तिरस्कार छूटेगा, बल्कि दूसरोंको भी अुसके पास आने और बैठनेमें हिचक मालूम होगी। सफाअी अेक बढ़ियासे बढ़िया दवा है। मुद्दती बीमारीमें तो अुसके बिना बीमारका काम चल ही नहीं सकता। पंचगनी जैसी जगहमें जाकर गन्दा रहनेसे अच्छा तो यह है कि रोगी अपने ही प्रदेश या स्थानमें सफाअीके साथ रहे। अिससे अुसे ज्यादा लाभ हो सकता है।

तन्दुरुस्तीके लिअे त्वचा या चमड़ीका अपना खास महत्त्व है। हवावाले अध्यायमें हम देख चुके हैं कि चमड़ीको जो हवा लगती है, वह कितनी गुणकारक होती है। हवाकी तरह जलका स्पर्श भी गुणकारी होता है। जल-चिकित्सा द्वारा रोग मिटानेकी अेक पद्धति प्रचलित है, लेकिन यह अुसकी चर्चाका स्थान नहीं। आम तौर पर सफाअीके लिअे पानीका अुपयोग किया जाता है और अुसका अुतना अुपयोग तो सबको बराबर करना ही चाहिये। शरीरमें रोज गन्दगी पैदा होती है, रोज पसीना आता और सूखता है। अैसी दशामें अगर शरीर साफ न रखा जाय, तो त्वचा पर पाये जानेवाले सूक्ष्म छिद्रोंकी क्रियामें बाधा पड़ सकती है। पानीका स्पर्श तो क्षयरोगीके लिअे भी आवश्यक है। हाँ,

तेज बुखारकी या बढ़ी हुअी कमजोरीकी हालतमें वह नहा नहीं सकता, लेकिन अुस दशामें भी पहले गीले कपड़ेसे और फिर तुरन्त ही सूखे कपड़ेसे शरीरको पोंछ लेना जरूरी है। अिससे बीमारके सरदी खा जाने या थक जानेका डर रखना ठीक नहीं। शरीरको पानीके स्पर्श-मात्रसे सरदी नहीं होती। सरदी प्रायः तभी होती है, जब शरीरको देर तक हवामें गीला रहना और ठण्डा होना पड़ता है। चूँकि बीमारका सारा शरीर अेक साथ पोंछा नहीं जाता, और चूँकि खुद बीमारको अपने हाथों यह काम नहीं करना पड़ता, अिसलिअे अगर हलके हाथों बदन पोंछा जाय, तो बीमारके थकनेकी कोअी संभावना नहीं रहती। अगर ठण्डा पानी सहन न हो, तो कुनकुनेसे काम लिया जा सकता है, लेकिन खौलता हुआ पानी काममें न लेना चाहिये। अुससे थकावट बढ़ती है।

बुखारके अुतरने पर तो धीमे-धीमे स्नान करनेकी आदत डाल लेनी चाहिये। शुरूमें रोज-रोज स्नान न किया जा सके, तो दो चार दिनके अन्तरसे नहाना शुरू कर देने पर आहिस्ता-आहिस्ता रोज नहानेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। यदि नहाते समय और बदन पोंछते समय दूसरोंकी मदद ली जा सके, तो स्नानके कारण पैदा होनेवाली थकावट कुछ कम की जा सकती है। धीमे-धीमे ताकत आने पर नहाते समय औरोंकी मदद लेना आवश्यक नहीं रह जाता। नहानेसे शरीरकी चमड़ी साफ होती है, मुलायम बनती है, अुसका स्पर्श सुखद मालूम होता है, शरीरमें फुर्ती आ जाती है और चित्त प्रसन्न रहने लगता है। स्नानके गुण अनुभवसिद्ध हैं। क्षयके बीमारको अकारण ही लम्बी मुद्दत तक स्नानके लाभसे वंचित न रहना चाहिये।

दाँत और जीभकी सफाअी दिनमें अेक बार तो विशेष रूपसे, ध्यानपूर्वक करनी ही चाहिये। अगर ये गन्दे रहते हैं, तो अिनकी गन्दगी पेटमें पहुँचकर हाजमेको बिगाड़ती है। सोनेसे पहले कुल्ले कर लेने चाहियें। कुल्लोंके लिअे सादा पानी काफी है। कुल्लोंसे दाँतोंमें

घुसी हुअी जूठन वग़ैरा साफ हो जाती है, मुँहके अन्दर नमी रहती है और गलेमें खुश्कीका अनुभव नहीं होता। हर बार भोजनके बाद मुँह अच्छी तरह धोना चाहिये। मुखशुद्धिके लिअे हमारे यहाँ पान-सुपारी वग़ैरा खानेका रिवाज है, लेकिन सच्ची मुखशुद्धिके लिअे अिनकी आवश्यकता नहीं। मुखशुद्धिका सबसे अच्छा और आरोग्यवर्धक साधन तो पानी ही है। मुँह रेलगाड़ीका अिंजन नहीं कि अुसमें कोयलोंकी तरह दिनभर कुछ न कुछ झोंका जाय। बीमारको तो अिस आदतसे मुक्त ही रहना चाहिये।

जब फेफड़ोंमें कफ पैदा होने लगे, तो अुसे अन्दर ही अन्दर अिकट्ठा नहीं होने देना चाहिये और न अुसे बाहर निकालने या थूकनेमें थोड़ी भी अरुचि या अुकताहटसे काम लेना चाहिये। अगर कफ फेफड़ोंमें भरा रह जाय, तो वह वहाँ बोझ-सा बन जाता है, श्वासोच्छ्वासमें रुकावट पैदा करता है, फेफड़ोंके स्वस्थ भागको अस्वस्थ बनाता है और छातीमें घबराहट-सी पैदा करता है। अिस कफको जहाँ-तहाँ थूकना ठीक नहीं। जहाँ-तहाँ थूकनेसे आसपासकी जगह अितनी घिनौनी हो जाती है कि सफाअीपसंद आदमी वहाँ ठहर नहीं सकता। अिसलिअे कफ या बलग़मको अुगालदान या पीकदानमें ही अिकट्ठा करना चाहिये और अुसके विषको नष्ट करनेके लिअे अुगालदानमें 'लाअिसोल' या कार्बोलिकका पानी रखना चाहिये। अुगालदानके बलग़मको कूड़े-कचरेकी तरह जला डालना चाहिये और अुगालदानको भी खौलते पानीसे अच्छी तरह धोकर साफ रखना चाहिये।

साफ और गन्दे कपड़ेका भेद स्पष्ट है। जब अच्छे धुले हुअे कपड़े सफाअीके साथ पहने जाते हैं, तो वे मनको अेक अजीब-सा सुख पहुँचाते हैं। जहाँ गन्दगी है, वहाँ गम है—अुदासी है।

पहननेके कपड़ोंकी भाँति ही ओढ़ने-बिछानेके कपडे, कमरा और कमरेकी तमाम चीज़ें भी साफ रखनी चाहियें। कमरा रहने लायक

तभी मालूम होता है, जब अुसमें जरूरतकी चीज़ें ही रहती हैं, नहीं तो वह भी फर्नीचरकी या पसारीकी दूकान-सा मालूम होता है ।

आरामके दिनोंमें रोगीको बाहरकी सृष्टिके विविध वातावरणका लाभ सुलभ नहीं होता, अुसकी हालत कैदखानेके कैदियों जैसी होती है । अिसलिअे अुसके आसपास जितनी स्वच्छता रखी जाय, अुतना ही अुसका जीवन सरल और सुखद बनता है । स्वच्छतासे रोगीकी आशाको पोषण मिलता है ।

२०

औषधि और अन्य अुपचार

क्षय पर विजय पानेके लिअे आरामके सिवा दूसरा कोअी राजमार्ग नहीं । हर साल तरह-तरहकी दवाअें और तरह-तरहके अिलाज सामने आते हैं और गायब हो जाते हैं, लेकिन अभी तक अैसी कोअी दवा हाथ नहीं आअी, जो अिस बीमारीको जड़से साफ करती हो । अिससे पहलेके अध्यायोंमें यह बताया जा चुका है कि क्षयसे बचने और अच्छे होनेकी अेकमात्र सम्भावना अिसीमें है कि रोगी अपनेको कुदरतकी गतिके अधिकसे अधिक अनुकूल बना ले । फिर भी कअी चीजें क्षयकी रामबाण दवाके रूपमें दुनियाके सामने आती हैं, और अिसकी जड़में और-और बातोंके सिवा बीमारकी अपनी और अुसके सगे-सम्बन्धियोंकी रुचि और वृत्ति भी मुख्य होती है । लोगोंके दिलमें यह शंका अुठती है कि क्षय जैसी बीमारीसे कोअी बिना दवाके कैसे अच्छा हो जायगा ? और अिस शंकाके फलस्वरूप लोग अनेक तरहकी दवाओंका अिस्तेमाल बढ़ा देते हैं । जिस तरह बिना दवाके काम न चलनेकी झूठी धारणासे लोग दवाके पीछे दौड़ते हैं, अुसी तरह झटपट अच्छे हो जानेकी अिच्छा और अुससे पैदा होनेवाली अधीरता भी अुन्हें दवाकी ओर ले

जाती है। दवा खाअी जाय या न खाअी जाय, अिसमें कोअी शक नहीं कि क्षयका बीमार दो-चार दिनमें, दो-चार हफ्तोंमें या दो-चार महीनोंमें स्वस्थ नहीं हो सकता। कअी दवाओंके बारेमें लोग यह कहते सुने जाते हैं कि वे अगर गुण न करेंगी, तो अवगुण भी न करेंगी। अिसलिअे अुनका सेवन करनेमें कोअी हर्ज नहीं। लेकिन लोगोंका यह खयाल गलत है। शरीर कोअी गटर नहीं कि जिसमें जानी-अनजानी, भली-बुरी हर तरहकी चीजें, जब मन चाहा, डाल दीं। शरीर अिसे बरदाश्त नही कर सकता। दवाअें अेक तरहका अर्क होती हैं। जिन दवाओंके गुण-दोषका हमें पता न हो और जिनसे लाभ होनेकी संभावना न हो, अुनको सिर्फ अपना मन मनानेके लिअे शरीरमें अुंडेलते रहना अुचित नहीं। सभी दवाअें शरीरके सूक्ष्म और बहुविध तंत्रको अपने तापसे तपाती हैं, और यह तो सभी जानते हैं कि अेक अरसे तक अुनका अुपयोग करते रहनेसे अन्तमें वे नुकसान पहुँचाती हैं। जब रोग अपनी गतिके कारण शरीरको बुरी तरह झकझोर और तपा रहा हो, तब निकम्मी दवाओंके प्रयोग द्वारा शरीरके अुस तापको अधिक अुग्र बनानेसे अन्तमें परेशानी ही पल्ले पड़ती है।

क्षयकी जड़को निर्बल बनानेवाली अेक भी दवा आज तक नहीं निकली। मतलब यह कि रोगके लक्षणोंको मिटानेमें दवा कम ही काम आती है। आराम आदिके योगसे शरीरमें रोगके विषका सचार ज्यों-ज्यों कम होता है, त्यों-त्यों रोगके लक्षण कमजोर पडते जाते हैं। जब रोगके लक्षणोंसे रोगी खूब त्रस्त हो अुठता है, तो अुस त्रासको सह्य बनानेके लिअे कभी-कभी दवा दी जाती है। लेकिन दवाका यह अुपयोग क्षणिक आराम पहुँचानेकी दृष्टिसे ही होता है। अतअेव अिष्ट यही है कि यह अुपयोग कमसे कम हो।

क्षयका नाश करनेके लिअे समय-समय पर अनेक 'अिंजेक्शनों' (पिचकारियों) का भी प्रचार होता रहता है। अिनमें से कुछ तो रोगको अुभाड़ने या भडकानेवाले होते हैं और अक्सर रोगीको बेहद नुकसान

पहुँचाते हैं । घातक न होने पर भी बीमारीका यह अुभाड़ प्रायः असह्य हो जाता है और अुसकी मुद्दतको बढ़ा देता है । तीव्र अुपचार या तो तारक होते हैं या मारक । ये किसको तारते और किसको मारते हैं, कोअी कह नहीं सकता । अिसका सारा आधार बीमारकी अपनी जीवनी-शक्ति पर है, और अिस शक्तिका माप जाननेका कोअी साधन नहीं । अभी तक कोअी मोहक, चमत्कारिक या तात्कालिक परिणाम पैदा करनेवाला तरीक़ा या रास्ता हाथ नहीं आया । छोटे माने जानेवाले रास्ते प्रायः लम्बे, बहुत ही लम्बे, साबित हुअे हैं । जोखिम अुठाने और प्रयोग करनेकी वृत्ति, शक्ति और अनुकूलता सबके लिअे साध्य नहीं होती — सबमें पाअी भी नहीं जाती । अगर रोगी दवाओंके चक्करमें न फँसे और तड़कीले-भड़कीले, शानदार, अचरज भरे और दिखनौटे अिलाजोंकी मायामें अपना मन न रमाकर सीधी, सस्ती, सरल और परिणाममें हितकारी दिनचर्याको अपनावे, तो अुसके अुज्ज्वल भविष्यकी पूरी आशा रखी जा सकती है । "बिना दवाके केवल पथ्य द्वारा व्याधि दूर होती है, परन्तु पथ्यके अभावमें सैकडों दवाअें भी व्याधिको दूर नहीं कर पातीं।" वंगसेनका यह कथन क्षयके सम्बन्धमें तो अक्षरशः सच है ।

२१

युक्त श्रम

जिस प्रकार विना आरामके क्षयका अुपचार नहीं हो सकता, अुसी प्रकार विना युक्त श्रमके वह अुपचार अपूर्ण और अपरिपक्व रहता है। ढालके दो पहलुओंकी तरह आराम और कसरत भी अिलाजके दो अैसे पहलू हैं, जो अेक-दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते। जब तक रोगकी थकावट दूर न हो, बुखार न अुतरे, नाड़ी और श्वासोच्छ्वासकी गतिमें सुधार न हो, तब तक बीमारको यथार्थ आराम करना चाहिये। जब रोगका विष शरीरका शोषण करना छोड़ देता है, तो रोगीके लिअे व्यायाम या कसरतका समय आता है। जिस समय रोगका विष प्रबल होता है, अुस समय शरीरकी क्रियामें समताकी कमी रहती है। अैसी दशामें कसरत या मेहनत करना जान बूझकर आगमें कूदना है। 'टायफॉअिड' जैसी बीमारीमें जब रोगके लक्षण नष्ट हो जाते हैं और रोगीको अच्छा मालूम होने लगता है, तो अुस समय तक रोगके घाव भी भर चुकते हैं; लेकिन क्षयमें हालत ठीक अिससे अुलटी होती है। जब बुखार जैसे बाहरी लक्षण मौजूद रहते हैं, तो फेफड़ोंकी क्षय-ग्रन्थियोंमें स्वस्थता नहीं आती; यही नहीं बल्कि ग्रन्थिजन्य विष शरीरमें घूमता रहता है। ग्रन्थियोंके घावोंके भरनेकी क्रिया तभी शुरू होती है, जब रोगके लक्षण दब जाते हैं और रोगीको अच्छा मालूम होने लगता है। फिर घावोंके भरनेकी यह क्रिया बहुत ही धीमी होती है, अिसलिअे लम्बे आरामके बाद परिश्रम शुरू करते समय और अुसकी मात्रा बढ़ाते समय बहुत सावधानी और सजगतासे काम लेना पड़ता है। संक्रान्तिका यह समय रोगीके लिअे बहुत ही होशियार रहनेका समय होता है। यदि रोगके लक्षणोंके दबते ही वह अपनेको रोगमुक्त समझकर मनमाना

आहार-विहार करने लगें, तो दबे हुअे लक्षण फौरन प्रकट हो जाते हैं और बीमारी बढ़ जाती है। हमें अिस बातका ठीक-ठीक ध्यान रखना चाहिये कि आरामकी तरह कसरत भी अेक खुराक ही है। अुसका असर देखकर अुसे घटाया-बढ़ाया जाता है। कसरतको खुराक कहनेमें मैं किसी आलंकारिक भाषाका अुपयोग नहीं कर रहा, बल्कि जो हकीकत है वही कह रहा हूँ।

लगातार आठ दिन तक चौबीसों घण्टे बुखार न रहने पर ही मेहनत या कसरत शुरु की जा सकती है। लेकिन अगर बुखार लगातार अेक महीनेसे भी ज्यादा समय तक आता रहा हो और बुखारके तथा क्षयके दूसरे लक्षण जोरदार मालूम हुअे हों, तो बुखार अुतरनेके बाद भी दो से तीन हफ्तों तक और कभी-कभी अिससे भी ज्यादा समय तक आराम करते रहना हितकर होता है। क्षयके ज्वरको मलेरिया या दूसरे मामूली ज्वर-सा समझकर ज्वरके अुतरते ही मेहनत या काम-काज शुरु कर देना खतरनाक है। कसरत शुरू करनेमें कुछ देर हो जाय, तो अुससे कोअी नुकसान नहीं होता, लेकिन जल्दी करनेसे हानि अवश्य होती है। अगर बहुत ज्यादा ढिलाअी की जाय, तो अुनमें तन्दुरुस्त होनेमें बेकारकी देर लगती है। शरीर-तंत्रको रोगके विषसे लड़ना पड़ता है और अुसमें अुसे अपनी काफी ताक़त लगानी पड़ती है। लेकिन जब यह लड़ाअी बन्द हो जाती है, तो शरीरके लिअे कुछ करनेको नहीं रह जाता। अैसे समय रोगी कसरत न करे, तो अुसका शरीर शिथिल और अपंग बन सकता है। समय पर आराम और समय पर कसरत करनेसे ही दोनोंका परिणाम मधुर होता है।

मेहनतका आरम्भ रोज़ सुबह पाँच-पन्द्रह मिनट आरामकुर्सी पर बैठकर करना चाहिये और आहिस्ते-आहिस्ते बैठनेका समय बढ़ाते रहना चाहिये। यदि अैसा करते हुअे थकावट न मालूम हो और बुखार न आवे, तो शुरूमें अेक बार और फिर दो बार कुछ गज तक चलना शुरू करके धीरे-धीरे फासला बढ़ाते जाना चाहिये। अिस तरह मेहनत शुरू करनेके बाद

मतलब नहीं कि रोगी आराम करना कभी छोड़ दे। कसरतके समयको छोड़कर बाकी सारा समय तो अुसे आराम ही करना है। चलकर आनेके बाद पौन घण्टे तक आराम ही करना ज़रूरी है। अिस तरह थोड़ा समय स्नानके बाद, खानेसे पहले और खानेके बाद और दुपहरीमें पूरा समय रोगीको आराम करना ही चाहिये।

शुरूमें रोगीको सिवा चलनेके और किसी तरहका कोअी श्रम न करना चाहिये। अिस बातका निश्चय बडी आसानीसे किया जा सकता है कि शुरूमें रोगीको कितनी दूर चलना चाहिये और अुसके अिस चलनेका असर भी ठीक-ठीक जाना जा सकता है। चलनेका अर्थ भटकना या जहाँ-तहाँ खड़े रह जाना नहीं होता। अिधर-अुधर, जैसे-तैसे, अुठ-बैठ कर लेनेसे चलनेका पूरा लाभ नहीं मिलता। शुरूमें समतल जगह पर धीमी चालसे चलना चाहिये। बम्बअीमें ब्याहके जुलूसके समय बाराती जिस चालसे चलते हैं और जो बोलचालमें 'मामेरेकी चाल' कही जाती है, शुरूमें रोगीको अुसी चालसे चलना चाहिये। अगर अेक घण्टेमें अेक मील भी चला जा सके तो बस है। क्रम-क्रमसे अिस गतिको बढ़ाते हुअे घण्टेमें दो मीलकी गति तक बिना तकलीफ़के पहुँचना चाहिये, फिर चार-पाँच दिनके अन्तरसे चाल थोड़ी-थोडी बढ़ानी चाहिये और आहिस्ते-आहिस्ते घण्टेमें दो से तीन मील तक चलनेकी शक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिये। मगर अिससे ज्यादा तेज़ीके साथ चलनेका लोभ करनेसे फिर पटकनी खानेका अँदेशा रहता है। चलते समय शरीर तना हुआ और मुँह बन्द रखना चाहिये। चलनेसे शरीरकी गरमी बढ़ती है, अिसलिअे श्रम न करनेकी दशामें शरीरके लिअे जितने वस्त्र आवश्यक होते हैं, अुससे कुछ कम ही वे श्रमके समय रहने चाहियें। जहाँ तक हो सके, हवाका रुख बचा कर चलनेकी कोशिश करनी चाहिये। चलते या टहलते समय किसीको अपने साथ न रखना चाहिये। चलनेमें कसरत होती है; चलते-चलते बोलनेमें और भी कसरत होती है। अिससे चलनेवाला जल्दी थक जाता है। कभी-कभी बातचीतका विषय अितना दिलचस्प हो जाता है

कि रोगीको अपनी स्थितिका भान नहीं रहता और अगर चर्चाका विषय विवादास्पद हुआ, तो शरीरके साथ मन भी थक जाता है।

अगर चलते समय बार-बार खाँसी आने लगे, साँस फूलने लगे या नाकसे साँस लेनेमें तकलीफ होने लगे और मुँह खोलनेकी अिच्छा हो जाय, तो समझना चाहिये कि या तो ज्यादा चला गया है या चलनेकी गति ज्यादा है। असी दशामें तुरन्त ही विश्राम करना चाहिये। श्वासोच्छ्वासकी क्रिया पर ध्यान देनेसे बड़ी आसानीके साथ यह मालूम हो जाता है कि चलनेमें मर्यादाका पालन हो रहा है या नहीं — कहीं ज्यादा चलाअी तो नहीं हो रही। बिछौनेमें लेटे-लेटे साँस जितनी बार चलती है और जितनी गहरी चलती है, अुतनी ही अगर चलते समय भी रहे, तो समझना चाहिये कि चलनेमें अति नहीं हो रही। टहलकर आनेके बाद यह जाननेके लिअे कि टहलना ठीकसे हुआ या ज्यादा हो गया, थर्मामीटरसे शरीरकी गरमी देखनी चाहिये और नाड़ीकी गति मालूम करनी चाहिये। चलनेसे मुँहकी गरमी ठीक-ठीक नहीं बढ़ती। कुछ बीमारोंकी गरमी तो मामूली गरमीसे भी कम हो जाती है और कुछकी नाम-मात्रको बढ़ती है। चलनेका असर मालूम करनेके लिअे मुँहमें थर्मामीटर रखकर गरमी देखनेमें ठीक अंदाज नहीं आता। जो अिस तरीकेसे गरमी देखते हैं, अुनका खयाल है कि चलकर आनेके बाद फौरन ही थर्मामीटर लगाने पर भी गरमी ९८·४ डिग्रीसे ज्यादा नहीं रहनी चाहिये। अगर ज्यादा हो, तो आध घण्टेके आरामके बाद यह कम हो जानी चाहिये। अिससे ज्यादा रहे, तो समझना चाहिये कि चलनेमें अति हुअी।

लेकिन अिससे भी बेहतर तरीका तो गुदामें थर्मामीटर लगानेका है। वहाँ तीन मिनट तक पारेकी नलीको लगाये रखनेसे गरमीका अंदाज मालूम हो जाता है। अिस तरह थर्मामीटरका अुपयोग कर चुकने पर अुसे चौड़ी बैठकवाली शीशीमें रखना चाहिये, ताकि शीशी हिले नहीं और थर्मामीटरको चोट पहुँचे नहीं। शीशीके पेंदेमें रुअी भर

देनेसे पारेकी नलीके टूट जानेका खतरा नहीं रहता। थर्मामीटरको साफ़ रखनेके लिअे शीशीमें कार्वोलिकका पानी भर देना चाहिये। दस तोला पानीमें आधा तोला कार्वोलिक मिलानेसे अुसका आवश्यक मिश्रण तैयार हो जाता है। अगर कार्वोलिक न हो, तो साबुनका ठण्ढा पानी रखना चाहिये। अुपयोग करनेसे पहले थर्मामीटरको साफ ठण्ढे पानीसे धो लेना चाहिये।

अिस तरीकेसे गरमी देखनेकी दो पद्धतियाँ हैं: अेक, चलकर आनेके बाद तुरन्त देखनेकी; और दूसरी, विश्रामके पौन घण्टे बाद देखनेकी। दोनो पद्धतियोंसे काम लेना ज़रूरी नहीं। अगर आते ही देखी जाय, तो गरमी १००·४ डिग्रीसे ज़्यादा न होनी चाहिये। और पौन घण्टेके विश्रामके बाद ९९ डिग्री या अुससे भी कम होनी चाहिये। नाड़ीकी गति भी विश्रामके अन्तमें ९० के अन्दर रहनी चाहिये। अगर गरमी और नाड़ीका अन्दाज रोज-रोज़ अेकसा आता रहे, तो अुसे सुधारका शुभ लक्षण समझना चाहिये। अगर अिसमें कभी-कदास क्षणिक हेर-फेर मालूम पड़े, तो फ़ासला बढ़ाना न चाहिये। अिस क्रमसे रोगी धीमे-धीमे अेक बारमें तीनसे चार मील तक चलने लगता है। कुछ लोग अेक साथ छ:से आठ मील भी चलते हैं और कुछ अेक दिनमें १० मीलसे ज्यादा चलनेकी ताकत पा लेते हैं। लेकिन सब बीमारोंकी शक्ति अेक-सी नहीं होती; हरअेककी शक्तिमें तर-तमका भेद रहता ही है। अिसलिअे जरूरत अिस बातकी है कि दूसरोंको देखकर या सुनकर न तो लोभमें पड़ना चाहिये और न हदसे ज्यादा बढ़ना चाहिये।

जब समतल मैदानमें चलना सरल हो जाय, तो आहिस्ते-आहिस्ते चढ़नेका सिलसिला शुरू करना चाहिये। सीढ़ियाँ चढ़नेकी अपेक्षा मामूली चढ़ाअी चढ़ना आसान होता है। सीढ़ियोंका अुपयोग कम ही करना चाहिये। अगर चढ़ाअी सख्त और सीधी सीढ़ी जैसी हो, तो वह सधती नहीं और हदसे ज्यादा हो जाती है। चढ़नेकी कसरत भी क्रम-क्रमसे

बढ़ानी चाहिये। जैसे-जैसे शक्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे होशियारीके साथ दूरी और चढ़ाअी भी बढ़ाअी जाती है, अेक साथ ५०० और ६०० फीटकी चढ़ाअी भी चढ़ी जा सकती है। जहाँ चलनेके लिअे समतल जगह न हो, वहाँ चलना शुरू करते समय चढ़ने और खतम करते समय अुतरनेका क्रम रखना अिष्ट है। अिस तरीकेसे थकनेकी नौबत नहीं आती। जब चलते-चलते थकावट-सी मालूम हो, तो फ़ौरन रुककर थोड़ा दम ले लेना चाहिये। अिस तरह और अितना ज्यादा न चलना चाहिये कि चलते-चलते शरीर गरम हो अुठे।

जैसे-जैसे चलना अनुकूल होता जाता है, वैसे-वैसे बदनमें फुर्ती आने लगती है और मन प्रफुल्ल रहने लगता है। अिस आशाजनक स्थितिमें सजग रहना बहुत जरूरी है, क्योंकि यही वह स्थिति होती है, जब रोगी भूल-सा जाता है कि अुसे क्षय हुआ था और वह तन्दुरुस्त आदमीकी तरह बरतने लग जाता है। जिस तरह चाकूके लगते ही अँगुलीसे खून बहने लगता है, अतिशयताका ठीक वैसा असर नहीं होता। अुसका बुरा परिणाम धीमे-धीमे बढ़ता जाता है और जिस तरह लद्दू जानवर पर बोझ लादते-लादते अन्तमें फूल-सा हलका बोझ रखते ही वह बैठ जाता है, अुसी तरह जब अतिके कारण शरीररूपी तन्त्रको अेक-अेक करके अनेक आघात लगते रहते हैं, तो अन्तमें किसी दिन अकस्मात् किसी तुच्छ-से कारणको लेकर अुसकी गति रुक जाती है और बीमारी फिर खड़ी हो जाती है। तन्दुरुस्तीकी हालतमें हदसे ज्यादा मेहनत करनेके कारण ही क्षयका आरम्भ होता है और क्षयसे संभलने पर फिर वही अति रोगीको पछाड़ती है। क्षयके बीमारको श्रम अिस तरह करना चाहिये कि जिससे कभी थकावट न मालूम हो। अुसे कभी थकना न चाहिये। शरीरको सदा फुर्तीला और तरोताजा रहना चाहिये।

जिस तरह चलनेमें अेक प्रमाण और योजनासे काम लिया जाता है और क्रम-क्रमसे गति व दूरी बढ़ाअी जाती है, अुसी तरह शरीरश्रम करते समय भी प्रमाण और क्रमसे काम लेनेकी जरूरत रहती है। यदि

1316

रोगी वजन अुठाने और शरीरश्रमका अैसा ही कोअी दूसरा काम मनमाना करने लगे, तो अुसे बेहद नुकसान होता है । क्षयका बीमार भी धीरे-धीरे शरीरश्रम करनेके योग्य बनता है । लेकिन अिसके लिअे अुसे अेक मार्गदर्शककी आवश्यकता रहती है; नहीं तो अच्छा करनेकी कोशिशमें आदमी अपने हाथों अपना बुरा कर लेता है । शरीरश्रमकी आदत डालना हितकारक है, बशर्ते कि महीनोंकी मेहनतके बाद प्राप्त की गअी शक्ति क्षणभरमें नष्ट न होने देनेकी पूरी सावधानी रखी जाय ।

परिश्रम–सम्बन्धी अेक प्राचीन अुक्ति क्षयरोगीके लिअे तो अक्षरशः सच है । जब तक अुसका अुल्लघन नहीं होता, प्रायः पछ्तानेका अवसर नहीं आता । अुक्ति है **प्राक् श्रमात् विरजेत्** । अर्थात् थकनेसे पहले रुक जाना चाहिये ।

आदमी जितना कमाता है, अुतना ही अगर खर्च भी कर डालता है, तो वह व्यवहारकी अेक बड़ी गलती करता है और खर्चके आकस्मिक अवसरोंका सामना न कर सकनेके कारण वह तुरन्त घबरा जाता है । यही हाल शक्तिका है । जैसे-जैसे ताकत आती और बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे यदि रोगी अुसे खर्च भी करता चले, तो अुसके हाथों आसानीके साथ अनजाने ही मर्यादाका अुल्लंघन हो सकता है । अगर वैसा न भी हो, तो असाधारण अवसरोंका सामना वह डटकर कर नहीं सकता । वह देखता है कि अुसकी शक्ति अचानक लुट गअी है और वह फिरसे पटकनी खा गया है । अतअेव रोगीको अेक कुशल व्यापारीकी तरह अपनी शक्तिका संचय करना चाहिये, सारी शक्ति अेक साथ नष्ट न करके अुसे सञ्चित रखना चाहिये ।

चलना-फिरना शुरू करनेके बाद अगर फिरसे सुबह-शामका 'टेम्परेचर' कुछ बढ़ा हुआ मालूम पड़े, तो चलना बन्द करके तुरन्त आराम करना चाहिये । सुबह अुठते ही ९८ या अुससे ज़्यादा और शामको आरामके बाद ९९·२ या अुससे ज्यादा टेम्परेचर रहने लगे, तो समझना चाहिये कि अब आरामके बिना गति नहीं । जब आरामके

फलस्वरूप बुखार अुतर जाय, तो फिर नियमसे प्रमाणपूर्वक चलना शुरू किया जा सकता है ।

यदि क्षयका पता चलते ही सम्पूर्ण आराम किया जाय, किसी तरहकी लापरवाही और अुपेक्षासे काम न लिया जाय, नियमपूर्वक मर्यादित श्रम करनेकी आदत रखी जाय और थकनेसे पहले मेहनत बन्द कर दी जाय, तो अुपचारके दिनोंमें रोगीको फिर शायद ही बीमार पड़ना पड़े । आरामके फलस्वरूप जो थकावट अुतर जाती है, वह हमेशा अुतरी रहे और फिर थकावटका अनुभव न हो, यानी रोगी अपने व्यवहारमें अितना जाग्रत रहे, तो क्षयग्रस्त रहने पर भी अुसे विशेष कष्ट नहीं अुठाना पड़ता ।

२२

निवृत्तिमें प्रवृत्ति

ज्यों ही क्षय प्रकट हो और पहचान लिया जाय, रोगीको चाहिये कि वह अपने जीवनकी अनेक प्रवृत्तियोंको समेट ले, जिम्मेदारियों और कर्त्तव्योंसे मुक्त हो जाय और अपना सारा ध्यान रोगसे बचनेके अेक मात्र कार्यमें लगा दे । अिस तरह जबरदस्ती निवृत्तिको अपना लेनेके बाद भी रोगी बिलकुल शून्यवत् या जड़वत् नहीं बन जाता, न वैसा बननेकी जरूरत ही है । अुलटे, सजग रहकर अुसे यह देखना चाहिये कि कहीं वह वैसा बन न जाय । यदि मनको अिस या अुस तरीकेसे किसी न किसी काममें लगाया न जाय, तो वह निरुद्देश्य भटकने लगता है, अुसकी शक्ति कम हो जाती है और वह कायरताका शिकार बन जाता है । "कायरता मनकी अेक गंभीर बीमारी है । . . . वह मनकी संकल्पशक्तिको कुरेदकर खा जाती है और प्रगतिमें बाधक होती है" (डॉ० पिगने) । अिससे व्यक्तिकी कार्यशक्ति अेकदम कम हो

जाती है और आगे चलकर यही शत्रुका काम करती है। क्षयके कारण क्षत-विक्षत फेफड़ोको स्वस्थ वनानेके यत्नमें कहीं मन मुर्दा न वन जाय, अिसकी चिन्ता फेफडोंकी चिन्तासे भी ज़्यादा रखनी चाहिये। फेफडोकी हालत तो सुधर जाय, मगर मनोवल नष्ट हो जाय, तो आदमी स्वतंत्र रूपसे कुछ करने लायक नहीं रह जाता और फलतः वह दुनियामें वोझ-रूप वन जाता है। फिर अुसे जीवनमें पग-पग पर अपमान और तिरस्कारका सामना करना पडता है।

रोगीको दुहेरी सजगतासे काम लेना पड़ता है। अेक ओर अुसे यह देखना पड़ता है कि मन अुसका अच्छी हालतमें रहे, दूसरी ओर यह खयाल रखना पड़ता है कि अुससे अैसा कोअी काम न हो जाय, जो रोगके लक्षणोंको मिटानेमें और फेफडोंके घावको भरनेमें वाधक हो।

जव रोगी रोगके आरम्भमें विछौने पर पडा रहता है, तव भी वुखार वग़ैरा लक्षण तो अुसमें पाये ही जाते हैं। जैसे-जैसे अिलाज कारगर होता जाता है, क्रम-क्रमसे ये लक्षण घटते और दवते हैं। लेकिन अेकदम अितने नहीं दव जाते कि रोगी चलने-फिरने लग सके। अन्तमें जाकर रोगके लक्षण पूरी तरह दव जाते हैं और रोगी धीरे-धीरे अधिकाधिक चलने-फिरने लायक वन जाता है। शय्यावश रहते हुअे भी जव तक रोगके लक्षण प्रकट रहते हैं, तव तक शरीर और मनसे जितना आराम किया जाय, करना चाहिये। अुस दशामें रोगीको किसी तरहकी कोअी प्रवृत्ति न करनी चाहिये—कर्ता न वनना चाहिये। अुकताहट और परेशानीसे वचनेके लिअे यदि वह भरसक क्षण-क्षणमें 'शान्त आनन्द' का अनुभव करे, तो आखिर अुससे कोअी हानि नहीं होती। अैसी अवस्थामें रोगी मनोरंजन करनेवाले चित्र देख सकता है और मनको प्रसन्न करनेवाली वातें सुन सकता है। यही अुसका 'शान्त आनन्द' है।

अपना समय विताने और दुःख भूलनेमें संगीत क्षयरोगीकी वडी सहायता करता है। अपनी अिस स्थितिमें वह खुद तो न गा सकता

है, न बजा सकता है। लेकिन यदि अुसके मित्र या स्नेही अुसे कुछ सुनावें, तो अुससे अुसे अवश्य लाभ होता है। अिसके लिअे यह जरूरी नहीं कि रोगी संगीतशास्त्रका ज्ञाता हो। रंग-बिरंगे पक्षियोंका कलरव, समुद्रकी लहरें और वृक्षोंके आन्दोलनसे अुत्पन्न होनेवाली ध्वनि किन कानोंको आकर्षित नहीं करती? अगर यह कहा जाय कि संगीतका अंश मनुष्यमात्रमें मौजूद रहता है, तो वह गलत न होगा। दिलरुबा या सितार जैसे तन्तुवाद्योंका मृदु-मधुर स्वर रोगीके लिअे निश्चय ही शान्तिदायक होता है।

यह तो स्पष्ट है कि संगीतका अथवा अन्य किसी भी वस्तुका आनंद लेते समय रोगीको किसी तरहकी धांधली या अुतावली न करनी चाहिये।

बुखार वगैरा लक्षणोंके कम हो जाने पर रोगी चाहे तो कुछ-कुछ पढ़ना शुरू कर सकता है। लेकिन अुसे अैसी कोअी चीज न पढ़नी चाहिये, जिसमें मनको अेकाग्र करना पड़े, जिसे समझनेकी खास कोशिश करनी पड़े, जो मनमें जोश पैदा करे और अुसे अुत्तेजित या खिन्न कर दे, या जो अितनी दिलचस्प हो कि अेक बार शुरू करने पर फिर अधबीचमें छोड़नेका दिल न हो। अिसी तरह अैसी कोअी चीज भी न पढ़नी चाहिये, जो थकावट पैदा कर दे। पढ़नेसे पैदा होनेवाली थकान कोअी मामूली थकान नहीं होती। रोगीको वजनी पुस्तकें भी न पढ़नी चाहियें। अैसी पुस्तकोंको हाथमें रखकर या पेट और छातीके सहारे धरकर पढ़नेसे थकान पैदा होती है और हाथ दुखने लगते हैं। जहाँ तक हो सके रोगीको वे ही पुस्तकें पढ़नी चाहियें, जिनसे अुसका मन तो बहले, पर थकावट न मालूम हो। अैसी पुस्तकोंमें अितिहास, यात्रा, भ्रमण, वनस्पति, पशु-पक्षी आदिसे संबंध रखनेवाली पुस्तकें अच्छी मानी जाती हैं। रोगी चाहे तो वह ताशके सादे खेल भी खेल सकता है। बीच-बीचमें, रह-रहकर, और भी अैसे ही अनुकूल काम कुछ-कुछ किये जा सकते हैं, लेकिन कोअी भी काम अेक साथ देर तक नहीं किया

जा सकता । अैसा करनेसे रोगीको आराम नहीं मिलता और रोग भी कम नहीं होता । मनोरंजनके लिअे जो भी प्रबंध किया जाय, अुसमें थकानेवाली कोअी चीज न होनी चाहिये, न अैसा कोअी प्रसंग अुपस्थित होना चाहिये कि जिसमें रोगीको जोर लगाना पड़े । बढ़ते हुअे बुखारमें या अुससे पहले भी अिस तरहका कोअी आयोजन न होना चाहिये ।

जब रोगी बिछौना छोड़ने लायक हो जाता है, तो अुसे अपने मनोरंजनके लिअे अधिक विविधता मिलने लगती है । यही समय है जब रोगीको खास तौर पर अतिसे बचना चाहिये । अिस स्थितिमें रोगी अपनी रुचिके अनुसार अपने मनबहलावका साधन चुन सकता है । लेकिन चुनावमें अुसे कुछ मर्यादाओंका पालन जरूर करना चाहिये । जैसे, आहार-विहारके, खुली हवामें रहने-सहनेके और आराम वगैराके नियम अुसे न तो छोड़ने चाहियें और न तोड़ने चाहियें । अुसे जलसों, सम्मेलनों और नाटकघरोंकी भीड़से बचना चाहिये । जहाँ-तहाँ, जो चाहा सो खानेसे परहेज करना चाहिये; और बेअंदाज मेहनत भी न करनी चाहिये । अुसे सच्चे अर्थोंमें अपनी शक्तिका संचय और अुसकी रक्षा करनी चाहिये । रुपये-पैसोंके प्रबन्धकी तरह जब शक्तिका प्रबन्ध भी कुशलता और किफ़ायतके साथ किया जाता है, तो दिवालिया बननेकी नौबत नहीं आती । क्षय क्या है? शक्तिका दिवाला ही तो । रोगीका काम है कि वह अिस दिवालेसे अपना पिंड छुड़ाकर फिरसे ताकतका धनी बने और अुस धनको हाथसे न जाने दे ।

अिलाजके दिनोंमें सम्भोग वर्ज्य माना जाना चाहिये । कारण अिसका प्रकट और स्पष्ट ही है । अिलाजके बाद भी अिस विषयमें मर्यादाका जितना ध्यान रखा जाय, अुतना ही हितकर है । पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीके लिअे सम्भोग अधिक कष्टकारक हो सकता है । क्षयसे बची हुअी स्त्रीका कुछ ही समय बाद फिर गर्भवती होना अुसके शारीरिक सुखका घातक है ।

निवृत्तिमें प्रवृत्ति भी (यानी कुछ न करते हुअे भी कुछ न कुछ करते रहना) अुपचारका अेक अंग होना चाहिये। मगर ध्यान रहे कि कहीं अिस प्रवृत्तिके कारण पुन: दिवालिया बननेकी नौबत न आये। अिसके लिअे रोगीको श्रमकी मर्यादा समझ और सीख लेनी चाहिये। कोअी दूसरा आदमी यह मर्यादा निश्चित नहीं कर सकता। अिसका खयाल तो रोगीको खुद होना चाहिये, दूसरा कोअी अुसे यह ज्ञान नहीं दे सकता। जब तक श्रमकी मर्यादाका अुल्लंघन नहीं होता, चिन्ताका कोअी कारण नहीं रहता। थकावट सिर्फ शारीरिक ही नहीं होती। मनकी बेचैनी भी थकानका ही अेक अंग है। अगर भूल या गफलतसे थकावट पैदा करने जितना कोअी काम हो जाय, तो तुरन्त आराम करना चाहिये और जब तक थकावट पूरी-पूरी अुतर न जाय तथा शरीर और मनमें ताजगी और स्फूर्तिका ठीक-ठीक संचार न हो जाय, तब तक आराम जारी रखना चाहिये। क्षयके रोगीके लिअे हमेशा श्रमकी मर्यादामें रहना अेक अैसी ढाल है, जो अिलाजके दिनोंमें और अुसके बाद भी कअी तरहके आघातोंसे अुसकी रक्षा करती है।

२३

नियमनिष्ठा

क्षयका अिलाज अितना तो सरल है कि लोगोंको अुसकी अमूल्यता पर अेकाअेक विश्वास नहीं होता। कुछ तो अुसे अपनाते ही नहीं; कुछ अपनाकर अधबीचमें छोड़ देते हैं। लेकिन जो अुसे दृढ़तापूर्वक अपनाते और अन्त तक अुस पर कायम रहते हैं, वे सहीसलामत पार अुतर जाते हैं, यदि दूसरे विघ्न बाधक न हों। अिलाजकी सफलताका आधार जितना अुसकी अुपयोगितामें है, अुतना ही अुसका नियमपूर्वक पालन करनेमें भी है। जड-सी प्रतीत होनेवाली सृष्टिके सारे कार्य नियमानुसार होते हैं। जगत्का जीवनदाता सूर्य भी नियमबद्ध है। यही कारण है कि जगत्की गतिमें थोड़ी भी अुलझन पैदा नहीं होती। मनुष्यका संसार — समाज — भी नियमाधीन है। जब नियमिततामें किसी प्रकारकी शिथिलता आ जाती है, तो समाज पर तुरन्त ही अुसका प्रभाव पड़ता है। राज्यमें अुपद्रव खड़े हो जाते हैं, या कोअी शत्रु आक्रमण कर देता है और लड़ाअी छिड़ जाती है, तो अुस समयकी असाधारण स्थितिका सामना करनेके लिअे और राष्ट्रकी रक्षाके विचारसे, प्रजाके व्यवहारको विशेषतया मर्यादित बनानेवाले नियमोंका निर्माण करना पड़ता है। अिसी तरह जिस व्यक्तिके शरीरमें समूचे शरीरको स्वाहा कर जानेवाला क्षयरूपी शत्रु अेक बार संचार कर जाता है, अुसके लिअे तो वह स्थिति राज्य पर बाहरी शत्रुके आक्रमणके समान ही विकट होती है। अिसलिअे अुसे अपनी देहकी रक्षाके लिअे विशेष रूपसे नियमित बनना चाहिये। जिस तरह महावत मदोन्मत्त हाथीको अपने अंकुशकी मददसे वशमें रखता है, अुसी तरह रोगीको रोग पर काबू पानेके लिअे अपने आपको अंकुशमें रखना चाहिये। अिसमें कोअी शक नहीं कि बिना अंकुशके क्षय पर विजय पाना और

अुसे विजित बनाये रखना सभव नहीं । क्षयको दबानेके लिअे यदि रोगी नियमनिष्ठ न बना, तो स्वयं नष्ट हो जाता है ।

जब अेक बार क्षय जाग्रत हो लेता है, तो फिर अुसकी जकडमें फँसा हुआ व्यक्ति दूसरोंका अनुकरण नहीं कर सकता । अुसके जीवनमें हमेशाके लिअे अेक परिवर्तन हो जाता है । दूसरे लोग अनियमित रह-कर भी शायद अपना काम चला सकते हैं, लेकिन क्षयरोगीके लिअे अनियमितता यदि घातक नहीं सिद्ध होती, तो भी अनेक प्रकारसे दु:ख-दायक तो होती ही है । रुक-रुक कर, थोडा-थोडा अिलाज करानेसे कोअी लाभ नहीं । अिलाज तो लगातार अेक निश्चित योजनाके अनुसार होना चाहिये ।

पुराणोंमें अिन्द्रलोककी अप्सराअें योगियोंको अुनके योगसे चलित करनेके लिअे मृत्युलोकमें आती हैं । अुसी तरह क्षयरोगीको भी अुसके कुछ हितैषी सद्भावसे किन्तु अज्ञानवश ललचाते हैं, आवश्यक नियमोंको तोडनेकी प्रेरणा करते हैं, नियमोंका मज़ाक अुडाते हैं और अुनके प्रति अपनी अरुचि दिखाते हैं । यदि रोगी अिन सबके बावजूद भी अपने निश्चय पर दृढ रहता है और परेशान या दिक नहीं होता, तो निश्चय ही वह अपना बहुत हित करता है । यदि अिस रोगसे अपरिचित हितैषियोंको रोगके भीषण परिणामोंका ज्ञान न हो, तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं । वे बेचारे क्या जानें कि क्षयके कारण आदमी कितना कमजोर हो जाता है, अुसके शरीरमें सदाके लिअे क्या-क्या परिवर्तन हो जाते हैं, खोअी हुअी शक्तिको पुन: प्राप्त करनेमें अुसे कितनी अथक मेहनत करनी पडती है और रोगके दबने पर जो शक्ति प्राप्त होती है, वह किस प्रकार नियमके अभावसे और अतिशयताके परिणामसे बातकी बातमें नष्ट हो जाती है — अुस शानदार मकानकी तरह, जो बिजलीके गिरते ही पलमें खाक हो जाता है ! मनको मोहनेवाले अनेक प्रकारके प्रलोभन रोगीके स्मृति-पट पर आते और आँखोंके सामने प्रत्यक्षमें खड़े हो जाते हैं । लेकिन जिसे अेक बार क्षयके चक्कर पर चढना पडा है,

वह अगर दूसरोंके अज्ञानका शिकार हो जाय, या खुद लालचमें फँसकर चिकित्साके राजमार्गका त्याग कर दे, तो अन्तमें अुसका अहित ही होता है।

कभी-कभी स्वयं क्षयके बीमार भी नियमोंका मजाक अुडाते देखे जाते हैं। वे बडे घमण्डके साथ विना नियम-पालनके स्वस्थ होनेकी बातें करते सुने जाते हैं। लेकिन दूसरोंके अनुभव जैसेके तैसे कोअी अपने जीवनमें अुतार नहीं सकता। स्पष्ट ही अैसा करनेसे पहले अच्छी तरह अुन अनुभवोंकी छानबीन कर लेनी चाहिये। क्षय अनेक रूपोंवाला अेक व्यापक रोग है। कअियोंमें वह यों ही दब जाता है। अिसलिअे अगर कुछ मामलोंमें नियमकी परवा न करने पर भी वह वशमें रहता हो तो आश्चर्य नहीं। लेकिन सिर्फ अिसी कारण नियमोंकी अनावश्यकता सिद्ध नहीं होती। पहले यह जान लेना जरूरी है कि नियमका त्याग या निरादर करनेवाले रोगियोंके रोगकी स्थिति क्या थी। किसीको रोगका संशय या स्पर्श-भर होता है और कोअी रोगमें गले-गले तक फँसा रहता है। तिस पर भी ये सब क्षयके बीमार ही कहे जाते हैं। दूसरोंके अनुभवसे अपने अुपयोगकी चीज ग्रहण करनेमें विवेकसे काम लेना चाहिये। यदि नियमनिष्ठा सबके लिअे समानरूपसे आवश्यक मान ली जाय, तो किसीको अन्तमें पछतानेका कोअी कारण न रह जाय।

२४

मनोदशा

वैसे, क्षय हर अुम्रके व्यक्तियोको होता है, लेकिन जवानोंमें वह ज्यादा पाया जाता है। जवानीमें शरीरका पूरा-पूरा विकास हो चुकता है — वह जीवनका प्रवेशकाल होता है। अिस अुम्रमें अतीतकी बातें कम याद आती हैं, भविष्यके स्वप्न अधिक लहराते हैं। क्योंकि बाढ़ छलाछल भरी हुअी नदीकी तरह मन आशाओं और अुमंगोंसे छलका पड़ता है। वह खाने-पीने और खेलने-कूदनेमें मस्त रहता है। गंभीरता और सावधानीका अभी अंकुर भी फूटा नहीं होता। जीवनमें किसी प्रकारकी कमी और तंगीका अनुभव नहीं होता। चारों ओर निपुणता और प्रफुल्लता ही नज़र आती है। युवा हृदयको भविष्यके संकटोंका कोअी खयाल नहीं रहता। वह निर्मल आकाशमें विहरने और किलोल करनेवाले पक्षीकी तरह निर्द्वन्द्व होता है। अैसेमें अचानक कोअी निष्ठुर पारधी पक्षीको अपने तीरका निशाना बना दे और पक्षी घायल होकर नीचे आ गिरे, तो अुसकी जो दशा होती है, ठीक वही दशा अुस व्यक्तिकी होती है, जिस पर भरी जवानीमें क्षय अपना निर्मम प्रहार करता है — अुस समय भूचालकी तरह अेक अैसा अकल्पित और आकस्मिक दृश्य आँखोंके सामने आ खड़ा होता है कि आदमी सन्न रह जाता है — मन अुसका आकुल-व्याकुल हो जाता है। वह गमगीन होकर सोचने लगता है. यह क्या हो गया? आगे अब क्या होगा? लेकिन जो अनिवार्य है, अुसके लिअे अनन्त चिन्ता करने पर भी अुसमें रत्ती भर फर्क नहीं पड़ता। यदि राजरोगी देहमें जागे हुअे शत्रुको परास्त करनेके लिअे तुरन्त समता और तत्परतासे काम न ले, तो अुसे बेहद नुकसान हो सकता है। यदि मन अुसका भूतकालकी बातोंमें अुलझ जाय और

भविष्यकी चिन्तामें डूबा रहे, तो वर्तमानकी दुर्दशा हो जाय और भविष्य भी खाकमें मिल जाय। लेकिन अगर भूतकालके सन्ताप और अगम्य भविष्यकी चिन्ता छोडकर वह वर्तमानको अुसके वास्तविक रूपमें देखे-परखे, सावधानीके साथ कदम बढ़ाता चले और ठीकसे अपने कर्तव्यका पालन करता रहे, तो निश्चय ही अुसे अेक कडी और असह्य परीक्षामें से न गुज़रना पड़े। घबरानेसे कुछ भी हासिल नहीं होता। संकट आने पर हिम्मत हारकर बैठ जानेसे निराशा ही पल्ले पड़ती है। पराजय सहज हो जाती है।

जीवनपथ सदा सरल और सानुकूल नहीं होता। संसारकी सैर करनेवालेको तो रास्तेमें नदी-नाले भी मिलते हैं, मैदान और जंगल भी मिलते हैं, पहाड़ और पर्वत भी मिलते हैं। अगर वह अिन सबसे डर जाय, तो सैर धरी रह जाय। फिर तो अुसे दुनियासे मुँह मोड़ कर घरके किसी कोनेमें घुस बैठना चाहिये। लेकिन अिस तरह दुनियासे डरकर त्रस्त-पस्त हो जानेवालेकी दशा नदीके प्रवाहमें बहते हुअे पत्तेकी तरह ही दयनीय होती है। बिना प्रयत्नके कभी कुछ भी नहीं मिलता। राज-रोगी घोर अन्धकारको भेदकर जीवनका प्रकाश पुनः तभी प्राप्त कर सकता है, जब वह क्षयसे बचनेके लिअे तत्परतासे काम ले और धैर्य न छोड़े।

क्षयके बीमारको अनेक तरहके विचार आया करते हैं — कभी वह अपने लिअे सोचता है, कभी अपने परिवारके लिअे; कभी अपने काम-धन्धेकी चिन्ता करता है, तो कभी भविष्यकी चिन्तामें डूब जाता है। अनेक रूपोंवाला यह रोग बार-बार अुसकी आशालता पर तुषारपात करता नजर आता है, आशारूपी बौरको दुष्ट आँधीकी तरह नष्ट करता पाया जाता है, हाथमें आअी हुअी सफलताको विफल बनाता प्रतीत होता है और चित्तको चिन्तारूढ़ बना देता है। लेकिन याद रहे कि मनकी यह चिंतित अवस्था क्षयकी समर्थ साथिन है। चिन्ता क्षयकी अुत्पत्तिका अेक खास निमित्त होती है; क्षयकी स्थिति, वृद्धि और पुनर्जाग्रतिमें अुसका

अपना महत्त्वपूर्ण अग रहता है । अतअेव चित्तमे चिन्ता तो अुत्पन्न ही न होने देनी चाहिये । अुसे तो तुरन्त ही नष्ट कर डालना चाहिये ।

"हँसनेवालेके साथ दुनिया हँसती है, लेकिन रोनेवालेको तो अकेले ही रोना पडता है । जो स्वभावसे आनदी है, अुसे लोग ढूँढते आते हैं और अुदास रहनेवालेसे दूर भागते हैं । हर्ष मित्रोको जुटाता है, शोक अुन्हें दूर भगाता है ।" विलकॉक्सके अिस कथनका अनुभव किसे न होगा? दु.खमे आदमी जितना स्वय अपना साथी बन सकता है, अुतना और कोअी नहीं बन सकता । दूसरे अुसके दु.खकी जैसी-तैसी कल्पना कर सकते हैं, पर अुसका साक्षात्कार नहीं कर सकते । संसारकी आनन्द-सरिता दुखियोंके दु.खसे सूखती नहीं । बीमारकी बीमारीसे अुसके सगे-सम्बन्धियो और अिष्ट-मित्रोंके जीवनका अनेकविध रस नष्ट नहीं होता — अुस रसकी परितृप्तिको कोअी रोक नहीं पाता । और, क्या वजह है कि अुसे रोकनेकी अिच्छा भी की जाय? यदि हम ससारके प्रवाहके साथ बह नहीं सकते, तो क्यो न अुसके किनारे खडे रहकर अपने नेत्रोंको तृप्त करें और अुस स्थितिमे अपने सगे-सम्बन्धियोकी जितनी सहायता मिल जाय, अुतनी पाकर सतुष्ट रहें? यदि क्षयका बीमार अपने हृदयको सन्तोषसे परिपूर्ण रखे और दूसरों पर विशेष आशा न बाँधे, तो वह अपने मनकी समताको सुरक्षित रख सकता है और सान्त्वना पा सकता है । अगर वह स्वस्थ होनेका दृढ निश्चय कर ले और चिकित्साके रूपमें दिनचर्याका यथार्थ पालन करनेमे अपने मनको लगा दे, तो बहुत सभव है कि अन्तमें लाखों निराशाओके बीच छिपी किसी अमर आशाका अुसे दर्शन हो जाय ।

२५

हितैषी

यद्यपि अिलाजकी सफलताका मुख्य आधार रोगी पर है, तथापि अुसके मार्गको सरल या विकट बनाना दूसरोंके हाथमें है । यह स्वाभाविक है कि क्षय-जैसी बीमारीके होते ही सगे-सम्बन्धियोंकी भावनाको आघात पहुँचे और वे अुत्तेजित होकर रोगीकी सेवामें लगना चाहें — अुसके काम आना चाहें । लेकिन अकेली भावनासे संसारका कोअी ठोस और हितकारी काम क्वचित् ही हो पाता है । भावना सफल तभी होती है, जब अुसके साथ विवेकका पुट हो । अिसमें शक नहीं कि दुखीको अपने दुःखमें मित्रोंके आश्वासनकी जरूरत रहती है; लेकिन जिस तरह दवा देनेमें कुशलताकी आवश्यकता है, अुसी तरह दिलसे दिलको आश्वस्त करनेकी भी अपनी अेक कला होती है । और यह कला सबके पास पर्याप्त मात्रामें नहीं रहती । रोगीके मित्र अुसकी सेवा-सहायताके लिअे तत्पर रहें और रोगीको या अुसकी चिकित्सा करनेवालोंको, जब वे चाहें अुनसे सहायता मिला करे, तो रोगी और अुसके हितैषियोंके बीच अेक सामंजस्य स्थापित हो जाय और अुसका परिणाम भी मीठा हो । अिलाजके दरमियान रोगीका अपना मुख्य स्थान होना चाहिये और आसपासका वातावरण अुसके अनुकूल रहना चाहिये । अिलाजकी सफलताके लिअे यह आवश्यक है कि रोगीको दूसरोंका अनुसरण न करना पड़े, बल्कि अुसके साथी अुसके अनुकूल रहा करें ।

अगर रोगीके मित्र अुसे रात-दिन घेरे रहें, अुसके सामने अुसके दुःखकी सन्तापभरी चर्चा किया करें, अुस पर तरस खायें, अुसे अपने भले-बुरे अनुभव सुनावें, अुसकी मौजूदगीमें अुसके रोगके लक्षणोंकी चर्चा करें, अुसे भाँति-भाँतिकी सलाहें दें और रोज़-रोज अुनका यही व्यवहार

बना रहे, तो बताअिये कि बीमार अपना दुःख कैसे भूले, कैसे वह चित्तको भ्रान्त होनेसे रोके और किस प्रकार निश्चिन्त रहकर शान्ति प्राप्त करे? अैसी अवस्थामें वह जरूर अुकता अुठेगा, मन ही मन जलेगा, कुढ़ेगा, चिढ़ेगा और हैरान होता रहेगा। क्या ही अच्छा हो यदि मिलने-जुलनेवाले रोगीको अुसके संबंधका अपना दुःख न सुनायें, बल्कि दो मीठी बातों द्वारा अुसका मनोरंजन करके अुसकी अुत्तम सेवा करें। अुनकी अुपस्थिति ही अुनके हृदयके भावोंको व्यक्त करनेके लिअे पर्याप्त है। अुसके लिअे शब्दोंका अुपयोग करनेकी आवश्यकता क्या?

यह तो स्पष्ट है कि बीमारको भीड़-भड़क्केसे तकलीफ होती है — बहुतोंके बीचमें वह आरामसे रह नहीं सकता। जब घर छोड़कर दूसरी जगह जानेका निश्चय हो, तो अिष्ट यही है कि रोगीके साथ कमसे कम लोग जायँ। अिस रीतिसे अुसमें और अुसके साथियोंमें समरसता शीघ्र ही स्थापित हो जाती है और वह कायम रहती है।

रोगीके कुछ हितैषी अन्धप्रेमी होते हैं। वे अपने प्रेमका दुरुपयोग-सा करते हैं। कुछ क्षयका नाम सुनते ही अपने प्रियजनसे भागे-भागे फिरते हैं। वे डरते हैं कि कहीं नजदीक जानेसे वे खुद क्षयकी चपेटमें न आ जायँ। अैसे डरपोक हितैषी रोगीको अुतनी हानि नहीं पहुँचाते, जितनी अपने आपको पहुँचा लेते हैं। अुन्हें यह जान लेना चाहिये कि क्षयका बीमार न तो साँपकी तरह किसीको डँसता फिरता है और न पागल कुत्तेकी तरह काटने दौड़ता है। अुसका तिरस्कार करने और अुससे दूर रहनेवाले स्पष्ट ही अपने अज्ञान और झूठे अभिमानका परिचय देते हैं।

क्षयके रोगीके लिअे संसार जीवन-क्षेत्र नहीं रह जाता। वह तो अपने अुपचारके लिअे संसारसे दूर चला जाता है। अुसे स्वस्थ संसारसे टक्कर लेने या अुसके संघर्षमें आनेकी कोअी जरूरत नहीं रहती। यदि वह अपनी ओछी बुद्धिके कारण स्वस्थ संसारके पचरंगी जीवनमें विक्षेप डालना चाहे, तो संसारियोंके प्रेमसे हाथ धो बैठे, तिरस्कृत व परित्यक्तकी तरह अुसे अेकाकी जीवन बिताना पड़े, वह जीवनमें दुःखी हो अुठे।

अिसी तरह संसारका कर्तव्य है कि वह राजरोगीको बालककी भाँति सुरक्षित रखे। अगर दुनिया अुसके काम, अुसकी चर्या और अुसकी चिकित्साको न समझ सके, या ये सब अुसे अच्छे न लगें, तो अुसे चाहिये कि वह अिस संबंधमें तटस्थ रहे; मगर किसी भी हालतमें रोगीका मजाक न अुड़ाये, अुसका तिरस्कार न करे। यह तो स्पष्ट है कि अगर राजरोगी और सब बातोंको छोड़कर संसारसे केवल सहिष्णुता और अुदारताकी आशा रखे, तो अिसमें अनुचित कुछ नहीं है।

जिस तरह विद्याध्ययनके लिअे हम अपने सुकुमार बालकको किसी अच्छे शिक्षकके सिपुर्द करते हैं, अुसी तरह क्षयके बीमारको भी किसी विश्वासपात्र, अनुभवी, समझदार और खासकर रोगीके हितकी सदा चिन्ता रखनेवाले डॉक्टरके सिपुर्द करना चाहिये। अिष्टमित्रों और रिश्तेदारोंकी 'हूँफ'—हिम्मत—रोगीको आशावान बनाये रखती है; और अनुभवी मार्गदर्शककी 'हूँफ' अुसे संकटसे पार अुतारती है। अुसका अेक वाक्य, अेक वचन, अेक अुद्‌गार रोगीके दिनभरके दुःखको पलमें नष्ट कर देता है, अुसे आश्वस्त करता है और अुसके मनको हलका बना देता है। अुसकी वाणीमें आश्वासनके साथ अनुभव भी होता है। अगर रोगी अपने मार्गदर्शक या सलाहकारके साथ समरस हो जाय, तो अुसका बहुत कुछ भार हलका हो जाता है। जिस पर रोगीको विश्वास न रहे, जिससे अुसे हिम्मत न मिले, वह मार्गदर्शक क्षय जैसी बीमारीमें विशेष अुपयोगी नहीं होता। जिसकी आँखोंसे अमृतके बदले रोष झड़ता हो, जिसकी वाणीमें मिठासके बदले कटुता हो, कठोरता हो, जिसके दिलमें रोगीके लिअे सहानुभूतिके बदले सख्ती हो, अुसको आते देख कर रोगीका दिल हर्षसे अुछलता नहीं, बल्कि अुसे अेक धक्का-सा लगता है, जो अुसके लिअे हितकारक नहीं होता। चिकित्सक रोगीके लिअे तभी सच्चा और पूरा अुपयोगी सिद्ध होता है, जब वह अुसकी मित्रता प्राप्त कर लेता है, अुसे सलाह देते समय मुख्यतः अुसके हितका ही विचार करता है, आवश्यक और अनिवार्य खर्चकी ही सलाह देता है और जो बात

रोगीके लिअे सभव नहीं है, अुसका ज़िक तक नहीं करता। अधिकतर रोगियोंके साधन मर्यादित रहते हैं। वे तभी लम्बे समय तक टिक सकते और अन्त तक चिकित्सामें काम आ सकते हैं, जब कि अुनका व्यर्थ व्यय न कराया जाय। जो चिकित्सक या मार्गदर्शक 'धन हरे, धोखो (चिंता) न हरे' की कोटिका होता है, वह रोगीको ले बैठता है।

योजयते हिताय — सन्मित्रका यह लक्षण जिस मार्गदर्शकमें होता है, वही रोगीके दुःखको मिटाकर अुसे अुबार सकता है।

२६

अुपचारमें समयका स्थान

क्षयके अिलाजमें कितना समय लग जायगा, अिस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता। कुछ धूमकेतु असे होते हैं, जिनके पथका पता नहीं चलता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि अुनकी अेक-अेक परिक्रमाको कितना समय लगता है और वे फिर कब दिखाअी पड़ते हैं। यही हाल क्षयका है। निमोनिया और टायफॉअिडकी तरह क्षयकी कोअी मुद्दत नहीं रहती। यह तो निश्चित है कि अुसके अिलाजमें हफ्तों और पखवाड़ोंसे काम नहीं चलता। यह भी तय-सा है कि चार-छः महीनोंके अंदर आदमी खड़ा नहीं हो सकता। रोगके बलाबल परसे भी अुसका समय निश्चित नहीं किया जा सकता। यहां किसी तरहकी कल्पना या धारणा काम नहीं देती। अिसलिअे अुसमें अुलझना व्यर्थ है। जैसे-जैसे फेफड़ों पर रोगका असर होता जाता है, वैसे-वैसे बाहर बुखार वगैरा लक्षण प्रकट होने लगते हैं। फेफड़ोंकी खराबीको दूर होनेमें बरसों बीत जाते हैं और कभी-कभी तो वह पूरी तरह दूर होती ही नहीं। अिसलिअे अुसके आधार पर अिलाज बन्द करनेका निर्णय नहीं किया जा सकता। यह भी अिष्ट नहीं कि मैं अी

वर्षों तक अिलाज करानेको तैयार हो जाय। क्योंकि अुसके वाद भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि भीतरी लक्षण सब मिट ही जायँगे। अुलटे, अिस तरहका निर्णय करनेसे रोगीको वेहद आर्थिक हानि सहनी पड सकती है और नैतिक दृष्टिसे कल्पनातीत नुकसान अुठाना पड़ सकता है।

जब तक बुखार, तेज नाड़ी और दुर्वलता जैसे लक्षण मौजूद रहते हैं, अिलाज छोडा नहीं जा सकता। यही क्यों, तब तक आराम छोड और कुछ किया भी नहीं जा सकता। अिन वाहरी लक्षणो पर विजय पानेके लिअे जितना जरूरी हो, अुतना समय देना चाहिये। आरामके सिलसिलेमें समय पाकर कसरत शुरू करना और क्रम-क्रमसे अुसे बढ़ाते जाना भी अिलाजका ही अेक अंग है। यह कहना भी कठिन है कि कौन कितने समयमें किस हद तक कसरत कर सकता है। लेकिन जितनी कसरत की जाती है, अुतनी करनेसे शरीरकी गर्मीमें और नाडी तथा श्वासोच्छ्वासकी गतिमें कितनी वृद्धि होती है, यह वृद्धि कितने समयके अंदर दूर हो जाती है और कितनी देरमें गर्मी वगैरा अपनी मर्यादामें आ जाते हैं, अिस परसे शरीरकी शक्तिका कुछ अन्दाज किया जा सकता है। मानसिक और शारीरिक परिश्रमके कारण शुरूमें शरीरकी गर्मी और नाड़ी तथा साँसकी गतिमें जो वृद्धि होगी, वह धीरे-धीरे कम होती जायगी और जल्दी खतम हो जायगी। आगे चलकर अगर यह वृद्धि नाम-मात्रकी ही हो, अथवा आम तौर पर जितनी होनी चाहिये अुतनी ही हो, तो यह अनुमान किया जा सकता है कि सुधार अधिक से अधिक हो चुका है। जब तक रोगीके शरीर-तंत्रमें भिन्न-भिन्न प्रकारका — ज्वर, नाडी, मन आदिका — आवश्यक सन्तुलन अधिकसे अधिक अुत्पन्न न हो जाय, तब तक अिलाज जारी रखना चाहिये।

अिलाजमें कितना समय लग जायगा, अिसका आधार कुछ अिस बात पर भी है कि रोग किस अवस्थामें पहचाना जाता है और अिलाज कब शुरू होता है। यदि शुरूमें अकारण देर न की जाय,

या कमसे कम देर की जाय, तो अुसी हिसाबसे अन्तमें समयकी अधिक बचत होती है; और स्पष्ट ही अधिक वाछनीय भी यही है कि शुरूकी अपेक्षा अन्तका समय बचे । बादका समय बचानेका मौका मिल भी सकता है, शायद न भी मिले, और मिले भी तो शायद वह संतोषजनक न हो ।

अिस बीमारीमें समयका अनादर करना हितकारी नहीं होता । अेक फ्रांसीसी कहावत है कि 'जो कुछ समयके विरुद्ध — अुसकी परवाह किये बिना — किया जाता है, समय भी अुसकी परवाह नहीं करता ।' क्षयके बारेमें यह कहावत भलीभाँति चरितार्थ होती है ।

२७

अुत्तरजीवन

क्षयका अन्त अुसके जन्मकी तरह विलक्षण और अद्भुत है । रोगके लक्षण दब जाते हैं, शक्ति आ जाती है, काम-काज होने लगता है, फिर भी शरीर रोगाक्रित तो रहता ही है । शरीरके साथ क्षयका कुछ वैसा ही सम्बन्ध हो जाता है, जैसा दो लडनेवाले पडोसी राज्योंके बीच युद्ध समाप्त होने पर रहता है — लडाअी तो खतम हो जाती है, लेकिन शंका दोनोंके दिलमें बनी रहती है । पता नहीं, कौन कब अचानक हमला कर दे, अिसलिअे दोनों होशियार रहते हैं और शस्त्रास्त्रसे सज्ज रहते हैं और शस्त्रबद्ध होकर सन्धिकी रक्षा करते हैं । यदि अिलाज सफल रहा, तो क्षयका हमला व्यापक नहीं हो पाता । अुससे जो खराबी पैदा हुअी थी, वह मन्द और बन्द हो जाती है और फेफड़ोंका जितना भाग क्षयसे अलिप्त रहा था, अुतना नष्ट होनेसे बच जाता है । अिलाजकी सफलताका अर्थ है, देह और क्षयके बीच शस्त्रबद्ध सन्धि । कभी-कभी यह सन्धि जीवनभर कायम रहती है, कभी देरमें या जल्दी टूट

जाती है और तब क्षयके हमले पर हमले होने लगते हैं। यदि अिलाजके फलस्वरूप ज्वर, शोष, थकान, आदि क्षयके महत्त्वपूर्ण लक्षण लुप्त हो जाते हैं और लगातार पूरे दो साल तक फिर प्रकट नहीं होते, तो अक्सर समझौता स्थायी हो जाता है, रोगका त्रास मिट जाता है और यह मान लिया जाता है कि रोग पूरी तरह वशमें आ गया। अिसके बाद यदि जीवन मर्यादापूर्वक व्यतीत किया जाय, तो क्षयसे परेशान होने और फिरसे पटकनी खानेकी सम्भावना कम ही रह जाती है। क्षयरोगीको अपना अुत्तरजीवन — चिकित्साके बादका जीवन — सरल और सफल बनानेके लिअे अपना समूचा व्यवहार अिस तरहका बना लेना चाहिये कि क्षयको पुन. भड़कनेका मौका ही न मिले। क्षयके बीमारमे ताकत आती तो है, लेकिन वह असल ताकत जैसी नहीं होती। क्षयके संचारसे फेफडोका कितना भाग नष्ट हुआ है, कितना निरुपयोगी बना है और कितना नीरोग व कार्यक्षम रहा है, यह जानना जरूरी है; क्योकि ताकत अुसी हिसाबसे आती है। यह तो निश्चित ही है कि क्षयके बीमारकी सहन-शक्ति स्वस्थ दशामें जितनी और जैसी रहा करती थी, बीमारीके बाद अुतनी और वैसी नहीं रहती। अिलाजके दरमियान रोगीको अपने लिअे जो नअी दिनचर्या बनानी पडती है, आवश्यक हेर-फेरके साथ अुसका बहुत-कुछ अंश अुसे 'स्वस्थ' होने पर भी जीवनभर कायम रखना चाहिये। अुसे मर्यादा और श्रम-सीमाका अुल्लंघन न करना चाहिये। हर तरहकी अतिसे बचना चाहिये। जागरण न करना चाहिये। युक्ताहारी रहना चाहिये। आवश्यक और अुचित मात्रामें पुष्टिकारक खुराक लेनी चाहिये। भीड-भडक्केसे बचना चाहिये। खुली और ताजी हवाका त्याग न करना चाहिये। हदसे ज्यादा शारीरिक और मानसिक श्रम न करना चाहिये। जिन कामोको बहुत ही अेकाग्रताके साथ, बडे वेगसे, देर तक करना पडता हो, अुनसे बचना चाहिये। अपने आस-पास जरूरतसे ज्यादा अुपाधि न बढ़ानी चाहिये। सम्भोग क्वचित् ही करना चाहिये और सबसे बडी बात जो आरामकी है, अुसे कभी

भूलना न चाहिये । छुट्टीके दिनोंमें अिधर-अुधर भटकनेके बजाय आराम करना चाहिये और कअी दिनोंकी चढ़ी हुअी थकावटको अुतारनेका पूरा खयाल रखना चाहिये । जिस तरह अुपवास और रेचनसे पेटका मल दूर होता है, अुसी तरह समय पाकर भरपूर आराम करनेसे शरीर और मनकी थकान मिटती है । सालमें अेकाध महीना काम-धन्धेसे छुट्टी लेकर पूरी तरह आराम किया जाय, तो रोगको वशमें रखना आसान हो जाता है ।

क्षयके प्रकट होनेपर और अुसके वशमें आ जानेके बाद भी औरोंकी तरह क्षयके बीमारको दूसरी तरहकी बीमारियाँ होती हैं और मिटती हैं । लेकिन अिन बीमारियोंमें अुसे औरोंकी अपेक्षा ज्यादा सावधान रहना चाहिये । खासकर सर्दीका और सर्दीकी बीमारीका पूरा खयाल रखना चाहिये । किसी भी दशामें अुसकी अुपेक्षा न करनी चाहिये । जब तक नये पैदा हुअे रोगका असर पूरी तरह मिट न जाय, तब तक होशियारीसे काम लेना चाहिये और दूसरे रोगके कारण अुत्पन्न कमजोरीके दिनोंमें क्षयको सिर अुठानेका मौका न मिल जाय, अिसका ध्यान रखना चाहिये ।

अपने अुत्तरजीवनमें क्षयके बीमारको स्थान-परिवर्तनकी कोअी खास जरूरत नहीं रहती, न सबके लिअे वह सहज ही होता है । वह जहाँ कहीं भी रहे, अुसके रहनेका मकान हवादार, अुजेलेवाला और साफ होना चाहिये । घरमें अैसा प्रबन्ध होना चाहिये कि रोगी जब चाहे आराम कर सके । आदर्श वातावरण और आदर्श कार्य प्राप्त करना तो अुसके लिअे आसान नहीं होता । कअी अपने व्यवसायको बदल नहीं सकते । बदलनेसे अुन्हें कोअी निश्चित लाभ नहीं हो पाता । नये व्यवसायमें निपुण होने और अुससे पर्याप्त आमदनी कर लेनेकी चिन्ता बनी रहती है । अगर पेशेमें या काममें बिना सोचे-विचारे परिवर्तन किया जाता है, तो अन्तमें पछताना पड़ सकता है । यदि रोगीके असल व्यवसायमें स्वास्थ्यके लिअे घातक अंश हदसे ज्यादा और गंभीर प्रकारके न हों, तो अुसी व्यवसायमें लगे

रहना अच्छा है । आजीविकाके या दूसरी ज़िम्मेदारीवाले कामोंमें आदमीका जितना समय खर्च होता है, अुससे दुगना समय अुसके अपने पास रहता है । क्षयरोगी अपने अुत्तरजीवनमें किस तरहका काम कैसे वातावरणमें करता है, रोगके साथ अुसकी सन्धिके कायम रहने न रहनेका आधार अिस पर अुतना नहीं होता, जितना अिस बात पर होता है कि वह अपने पासके शेष दुगने समयका अुपयोग किस प्रकार करता है । अिस शेष समय पर अुसका सम्पूर्ण अधिकार रहना चाहिये । यदि वह अपने शेष समयके १४ से १६ घण्टोंमें रोज अुचित आराम करे, व्यर्थकी झंझटें मोल न ले, क्रिकेट, टेनिस, फुटबॉल, हॉकी, खो-खो वगैरा श्रम पहुँचानेवाले खेलोंमें दिलचस्पी न रखे, नाटकघरोंमें और बड़े-बड़े सभाभवनोंमें होनेवाली विराट सभाओंमें क्वचित् ही जाय, मन और शरीरको विश्राम व शान्ति दे और शक्तिका अुपयोग किफायतके साथ करे, तो क्षय पर अुसका प्रभुत्व दिन ब दिन दृढ़ होता चलेगा और अन्तमें स्थायी बन जायगा । लम्बी अुमर तक जीनेके लिअे अुसे अपनी तृष्णाओं और अभिलाषाओंको कम कर लेना चाहिये और सन्तुष्ट तथा अेकमार्गी जीवन बिताना चाहिये । काम अुतना ही करना चाहिये, जितना बिलकुल आवश्यक और अनिवार्य हो । आलस्य और प्रमादके समान नीतिका नाश करनेवाले दोषोंसे मुक्त रहने और दुनियाके लिअे बोझरूप न बननेके लिअे जितना जरूरी हो, अुतना ही काम करके सन्तुष्ट रहना चाहिये ।

वैसे, अिस रोगका स्वभाव फिर-फिर जागनेका है; लेकिन अिससे डरते रहनेकी कोअी जरूरत नहीं । जब अिलाज समय पर, योजनापूर्वक और पूरा-पूरा किया जाता है और रोगी श्रमकी सीमाका अुल्लंघन नहीं करता, तो खतरा बहुत कम हो जाता है । रोग फिरसे आँधी या बवण्डरकी तरह क्वचित् ही जागता है । जागनेसे पहले अुसकी टंकार सुनाअी पड़ती है । अगर यह टंकार सुनते ही रोगी चेत जाय और श्रमको यथासंभव कम करके आरामकी मात्रा बढ़ा दे, तो रोगका जागना और प्रकट होना रुक जाय ।

यह टकार अनेक रूपोंमें सुनाअी पड़ती है। यदि अिसकी अवगणना की जाय और यह सोचकर मन मना लिया जाय कि सब कुछ अच्छा है, तो फिरसे पछाड़ खानेकी नौबत आ सकती है और फिर वही अिलाज अथसे अिति तक करना पड सकता है, और यह तो स्पष्ट है कि दूसरी बार अुसका परिणाम अुतना अच्छा नहीं होता। विषम परिस्थितियोंका सामना करनेकी हमारी शक्ति सीमित ही होती है — अनन्त नहीं होती। खासकर क्षयसे बचनेके बाद तो वह किसी भी दशामें अखूट नहीं रहती। अिस शक्तिको बार-बार चुनौती देना मौतको न्योता देना है। रोगकी पुनर्जाग्रतिकी टकार प्रथम जाग्रति जैसी ही होती है — चित्त अशान्त और चिड-चिडा बन जाता है, होशियारी गायब हो जाती है, थकावट मालूम होने लगती है, वजन क्रम-क्रमसे लगातार घटने लगता है, शरीरकी गर्मीमें विशेष परिवर्तन होता रहता है, खाँसी और कफकी शिकायत फिर पैदा हो जाती है या बढ जाती है और बराबर बढ़ती रहती है, पाचनशक्ति मन्द हो जाती है और बदहज़मी व क़ब्ज़ वग़ैराकी शिकायत बार-बार रहने लगती है। रोगीको चाहिये कि ऐसे समय वह तुरन्त चेत जाय, अनुभवी चिकित्सक की सलाह ले और जीवनमें आवश्यक परिवर्तन तुरन्त कर डाले। जब अिन चेतावनियोंकी सुनवाअी नहीं होती, तो ये सब क्षयके लक्षणके रूपमें स्थिर हो जाती हैं और रोग पुन. भडक अुठता है।

जिस तरह पहली बार क्षयसे अुबरनेका आधार रोगी पर है, अुसी तरह पुन. क्षयसागरमें फिसलनेसे बचना भी बहुत-कुछ अुसीके हाथ है। अगर पार अुतरनेवाला ‘मूर्ख, अुद्दत, दुर्बल मनवाला अथवा स्वेच्छाचारी’ नहीं बनता, तो वह पार हो लेता है और जीवनमें कुछ हद तक कर्ता और विशेषकर द्रष्टा बनकर रसपान करता रह सकता है।

२८

रतिदान

क्षयका अर्थ है, शक्तिका ह्रास; क्षयसे अुवरनेका मतलव है, पुनः शक्ति प्राप्त करना। मनुष्य शक्ति-संचयके वल पर क्षयसे अलिप्त रहता है। संयोगवश क्षय कसी शरीरमें प्रकट हो जाता है, तो अुसका मुकावला करनेके लिअे, अुससे वचनेके लिअे और दुवारा अुसके फन्देसे मुक्त रहनेके लिअे शक्ति-संचयसे अपूर्व सहायता मिलती है। अेक वार शरीरमें क्षयका संचार होनेके वाद शक्ति पुन· प्राप्त होती है, लेकिन साथ ही अुस शक्तिको पलमें नष्ट करनेवाले तत्त्व — क्षयवीज — भी शरीरमें वास करने लगते हैं। अतअेव जिस तरह अेक वँधी हुअी आमदनीवाला आदमी किफायतसे काम लेकर ही वेफिक्र रह सकता है, अुसी तरह राजरोगीको भी अपनी शक्ति वडी किफायतके साथ खर्च करनी पडती है — यही अुसके लिअे अुचित भी है। जीवन-निर्वाहके लिअे, आलस्य और प्रमादसे मुक्त रहनेके लिअे और अपने मनुष्यत्वको नष्ट होनेसे वचानेके लिअे शक्तिका व्यय आवश्यक और अनिवार्य होता है। विना अुसके जीवन मनुष्य-जीवन नहीं रह पाता। लेकिन यह अेक जानी हुअी वात है कि अिन कारणोंको लेकर जितनी शक्ति खर्च होती है, अुससे कहीं ज्यादा और निरर्थक व्यय स्वेच्छाचारके कारण होता है। राजरोगीको भरसक अिससे वचना चाहिये।

रतिदान या सम्भोगमें शक्ति और श्रम दोनोंका व्यय होता है। यदि अिसमें अति की जाय, तो यह स्वस्थ मनुष्यको भी क्षीण और निस्तेज वना देता है। राजरोगीके लिअे तो यह खतरनाक ही सावित होता है। रोग जाग्रत हो या सुप्त, अति हर हालतमें त्याज्य है। जव तक रोगके लक्षण मौजूद हो, परिमित मात्रामें भी सम्भोगकी लालसाका

पोषण या अमल करना अुचित नहीं । स्त्री-पुरुष दोनोंके लिअे यह वचन समान रूपसे आवश्यक है ।

रोगके लक्षणोंके दबते ही शरीर सुदृढ़, सशक्त और रोगके भयसे अेकदम मुक्त नहीं हो जाता । जब बुखार जैसे महत्त्वके लक्षण लगातार दो वर्षों तक प्रकट नहीं होते, तभी यह माना जाता है कि गजरोगी प्राय भयसे मुक्त हो चुका है और अुसे नया जीवन मिला है । लक्षणोंके लुप्त होनेके बाद दो वर्ष तक, और फिर आगेके अेक-दो वर्षों तक रोगीको नियमपूर्वक शक्तिका सचय और अुसकी वृद्धि करनी चाहिये । जिस तरह जन्मके बाद २०–२५ वर्ष तक शरीर और मनके विकास-युगमें सम्भोगसे विमुख रहकर लाभ अुठाया जाता है, अुसी तरह रोगके लक्षणोंके अदृष्ट होनेके बाद — कोअी तीन साल तक — रोगी रतिदानसे विमुख रहे, तो अुसे विशेष लाभ होता है और शरीर पुन. ठीक-ठीक सुगठित बन जाता है ।

जो कर्त्तव्यपरायण हैं, अुन्हें अपनी शक्तिका विचार करके अपनी जिम्मेदारी बढ़ानी चाहिये । क्षयके बीमारको बीमारीके लक्षण दूर होनेके बाद भी कमसे कम तीन साल तो अपने शरीरको सुगठित बनानेमें बिताने चाहिये । अिस बीच रतिदान और प्रजोत्पादनमें लगनेसे स्वास्थ्य-निर्माणमें स्पष्ट ही बाधा पहुँचती है । सभोगके परिणामस्वरूप अेक तो पुरुषको कमजोरीका सामना करना पडता है और दूसरे, सन्तान पैदा करके अपनी जिम्मेदारियोंको बढा लेनेसे स्वास्थ्यका मार्ग सरल नहीं रह जाता — अुसके विषम और विकट बन जानेका डर रहता है । यदि स्त्रीको क्षयके बाद तुरन्त ही अेकाध वर्षमें गर्भ रह जाता है, तो अुससे क्षयका पोषण होता है और दबे हुअे रोगके फिरसे भडक अुठनेकी अप्रिय सम्भावना बढ़ जाती है ।

चूँकि सम्भोग या मैथुनके कारण क्षयको पोषण मिलता है, अिसलिअे विवाहित स्त्री-पुरुषोंको पूर्ण स्वस्थ होने तक अुससे दूर ही रहना चाहिये — अिसीमें अुनकी भलाअी है । और जो अविवाहित हैं,

अुन्हें रोगके ठीकसे वशमें आ जानेके बाद भी कमसे कम तीन साल तक ब्याह न करना चाहिये। अिन दिनों ब्याह करके अपनी ज़िम्मेदारियोंको बढ़ाने और कअी तरहसे शक्तिका व्यय करनेवाले अवसरोंको न्यौता देने और शक्तिकी कमीका बोझ ढोनेमें कोअी लाभ नहीं।

वैसे, अिधर-अिधर हमारे आचार-विचारमें काफी परिवर्तन होने लगे हैं। मगर सगाअी-शादी अब भी छोटी अुम्रमें होती रहती है। अिसलिअे क्षयके शिकार बने हुअे अनेक नौजवान अगर शादीशुदा नहीं, तो सगाअीवाले ज़रूर होते हैं। अेक बार प्रकट होनेके बाद क्षयकी मर्यादा या मुद्दत कोअी बता नहीं सकता। अलग-अलग व्यक्तियोंमें अुसका रूप और अुसकी मुद्दत भी अलग-अलग होती है। दबनेके बाद भी दो-तीन साल तक वह बिलकुल दिखाअी नहीं पड़ेगा, यह कहना कठिन है। अैसी दशामें अेक विकट प्रश्न यह अुपस्थित होता है कि सगाअी क़ायम रखी जाय या तोड दी जाय। अिसका सीधा और सच्चा अुत्तर तो अेक ही हो सकता है। लेकिन वह प्रचलित रूढ़िके विरुद्ध पडता है। फिर भी यदि हम सगाअीसे सम्बद्ध वर-कन्या या युवक-युवतीके हितको प्रधानता दें और लोकाचारको अेक ओर रखें, तो राजीसे हो या नाराजीसे, श्रेय तो अिसीमें है कि सम्बन्ध तोड दिया जाय। अिसमें रोगीका भी हित है और दूसरे पक्षका भी हित है। जीवनमें कअी अैसे अवसर आते हैं, जब मनुष्यके मनोरथों पर वज्रपात-सा होता है। अकसर अपनी प्रिय अभिलाषाको नष्ट करनेवाले काम भी मनुष्यको कर्तव्यवश करने पड़ते हैं। ब्याहका सम्बन्ध जीवनव्यापी सम्बन्ध है। जीवनके सुखी या दुखी रहनेका आधार बहुत कुछ विवाहित जीवन पर है। अिसलिअे जीवनके अिस महान और अपूर्व प्रश्नके सम्बन्धमें अुदासीनता या लापरवाहीसे काम लेना अच्छा नहीं। जो आवश्यक है, अुसे तो अरुचिकर होने पर भी कर्तव्य-बुद्धिसे, दृढ़तापूर्वक कर ही लेना चाहिये — दूसरा कोअी अुपाय नहीं।

यदि कोअी अिसका यह अर्थ लगाये कि क्षयग्रस्त स्त्री-पुरुष सदाके लिअे विवाहित जीवनके अयोग्य बन जाते हैं, तो वह ठीक नहीं। जब अिलाज सफल हो जाता है, रोग पूरी तरह परास्त हो चुकता है और निर्भयताकी दृष्टिसे अूपर जितना समय सूचित किया है, अुतना सकुशल बीत जाता है, तो रोगीको विवाहित जीवनकी पात्रता और वैसा जीवन वितानेकी सन्धि अवश्य प्राप्त होती है। वह अपनी सन्तानेच्छाको तृप्त कर सकता है। अुसकी सन्तान भी औरोंकी तरह स्वस्थ अुत्पन्न होती है और यदि अुसका अुचित रीतिसे पालन-पोषण किया जाय तो नीरोग भी रहती है। वह मनोनुकूल अपना विकास भी कर लेती है और दूसरोंकी तरह वह भी जीवनमें अपना अेक स्थान बना लेती है।

२९

रोकथाम

अिसमें तो कोअी शक नहीं कि शरीरमें रोगके पैदा होनेके बाद अुसे निर्मूल करने या अुस पर विजय पानेके लिअे यत्न करनेसे अच्छा तो यह है कि रोगको पैदा ही न होने दिया जाय। यह दूसरा तरीका पहलेसे कहीं अधिक सौम्य व हितकारक है और अिसमें शक्ति व सम्पत्तिका व्यय भी कम होता है। लेकिन शरीरका नीरोग रहना ही बस नहीं है। सैकड़ों मनुष्य अैसे होते हैं, जो बीमार तो नहीं पड़ते जाते, फिर भी अुनमें तन्दुरुस्तीकी चमक नहीं पाअी जाती। शरीरका नीरोग रहना और स्वस्थ होना, दो अलग चीज़ें हैं। नीरोग अवस्थामें रोगका अभाव होता है, लेकिन जीवनी-शक्ति आदिकी मात्रा कम और हलके दर्जेकी होती है। स्वस्थ अवस्थामें न सिर्फ रोग ही नहीं होता, बल्कि जीवनी-शक्ति अुत्तम कोटिकी रहती है और शरीर और मन सदा

विकासशील रहते हैं। स्वास्थ्य अुतना सुलभ और सामान्य नहीं होता, जितना कि माना जाता है। स्वास्थ्यका तेज व्यक्तिके चेहरे पर सहज ही झलकता है। बहुतेरे लोग नीरोग रहनेमें सन्तोष मान लेते हैं, लेकिन याद रहे कि क्षय जैसे रोगके अधिकतर शिकार भी अिसी श्रेणीके लोगोंमें होते हैं। लोग स्वास्थ्यके महत्त्व और मूल्यको भूल गये हैं।

लोक-जीवनसे क्षयका सम्पूर्ण नाश करनेके लिअे या अुसे अितना निर्बल बना देनेके लिअे कि वह कभी सिर ही न अुठा सके, लोक-जीवन और लोक-संगठनमें सांगोपांग परिवर्तनकी आवश्यकता है। क्षय केवल वैद्यकका विषय नहीं। जनताके राजनैतिक, सामाजिक, कौटुम्बिक और आर्थिक जीवनका क्षयकी व्यापकताके साथ बहुत घना सम्बन्ध है। क्षयकी रोकका विषय विशाल और विषम है। यदि सरकार चाहे और तत्परता दिखाये, तो क्षयकी वर्तमान व्यापकता बहुत कम की जा सकती है।

क्षयकी रोकके लिअे जिन सार्वजनिक अुपायोंका प्रयोग आवश्यक है, अुनकी विस्तृत चर्चा करनेका यह स्थान नहीं। हमारे ज्यादातर शहरोंकी रचना, रहने और कामकाज करनेके लिअे बने हुअे मकानों और कारखानोंकी बनावट, शहरोंकी बेहद भीड़ और तन्दुरुस्तीको हानि पहुँचानेवाली खुराक, धनका अभाव, शराबकी लत और अुपद्रवी वातावरण, वगैरा सभी क्षयके अच्छे मददगार हैं। सरकारें चाहें तो अिन सबका प्रतिकार कर सकती हैं।

लेकिन आज तो न सरकारोंको अिसमें कोअी दिलचस्पी है, न परिवर्तनके कोअी लक्षण नजर आते हैं। लेकिन अिसका यह मतलब नहीं कि आजकी परिस्थितिमें क्षयकी रोकथामके लिअे कुछ किया ही नहीं जा सकता। यदि हमारे परिवार और अुन परिवारोंके व्यक्ति चाहें, तो अपने आस-पास क्षयको फैलनेसे रोक सकते हैं। शुरूके अेक अध्यायमें हम यह देख चुके हैं कि क्षयकी अुत्पत्तिमें चेतनरजका हाथ कितना नगण्य है। अिस रजके विरुद्ध युद्ध छेड़नेमें कोअी सार नहीं — अिस

तरहका युद्ध न केवल निरर्थक, निरुपयोगी, निष्फल और अशक्य है, बल्कि वह क्षयका सफल विरोध करनेके मार्गमें रुकावट पैदा करता है, विरोधियोंको पथभ्रष्ट बनाता है। हाँ, यदि क्षयको जगानेवाली परिस्थितिके खिलाफ युद्ध छेड़ा जाय, तो अवश्य ही क्षयके पंख काटे जा सकते हैं। जिस तरीकेसे क्षयके बीमारकी दिनचर्याकी रचना करके रोगको वशमें किया जाता है और चिकित्साके अन्तमें जिस दिनचर्याको अुत्तरजीवनका अंग बनानेसे क्षयके फिर अुभड़नेकी सम्भावना अेकदम कम की जा सकती है, यदि आम तौर पर सभी कुटुम्ब अुसी तरहकी दिनचर्या अपना लें, तो क्षयका प्रसार बहुत-कुछ रुक जाय।

सामान्य नियम तो यह है कि जो बाधाअें शारीरिक स्वास्थ्यको हानि पहुँचाती हैं, वे क्षयकी पोषक होती हैं। जहाँ विकासका अवरोध होता है, वहाँ निश्चय ही विनाशके प्रादुर्भावको अवकाश मिलता है। हमारी घर-गृहस्थीमें अैसे अनेक आरोग्यघातक विघ्न अुपस्थित होते रहते हैं, जो या तो परम्परागत होते हैं या आकस्मिक। ये विघ्न जितने दूर किये जाते हैं, क्षय भी अुतना ही क्षीण होता है। '**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**', जैसे अनेक प्राचीन वचनोंके रहते हुअे भी हमारे यहाँ शरीरकी ही अधिक अुपेक्षा की जाती है। बालकको नीरोग देखकर हम सन्तुष्ट हो रहते हैं। अुसके स्वास्थ्यको और अुसकी जीवनी-शक्तिको बढ़ानेका और रात-दिन होनेवाले अुसके विकासको विघ्न-बाधाओंसे दूर रखकर अुसे स्वास्थ्यवर्धक आदतें सिखानेका कोअी यत्न हमारी ओरसे नहीं होता — अिस विषयमें प्राय: हम अुपेक्षासे ही काम लेते हैं। लड़कों और लड़कियोंके शरीरको सुदृढ़, सुगठित और सुडौल बनानेकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। लड़कियोंमें पाअी जानेवाली सहज स्फूर्ति, अुमंग और अुल्लास आदिको विषधर सर्पकी भाँति प्रकट होते ही दबा दिया जाता है। अुन पर असमय ही गंभीरताका बोझ लादकर अुनके विकासको कुण्ठित बना दिया जाता है। बचपन ही में ब्याह करके अुन पर घर-गृहस्थी और मातृत्वका भार लाद दिया जाता है।

अिस तरह अुनके साथ शुरूसे अक्षम्य अत्याचार किये जाते हैं। सारी हवा ही अैसी बना दी जाती है कि जिसमें स्त्रियोंका जीवन कभी नवपल्लवित रह ही न सके। बाल-विवाह, बेजोड़ विवाह, परदा-प्रथा, छोटी-छोटी जातियोंके संकुचित दायरेमें विवाह करनेका आग्रह, आदि शरीर-शक्तिका ह्रास करनेवाले अनेक तत्त्व आज भी समाजमें प्रतिष्ठित हैं। ये और अैसी दूसरी प्रथाअें स्वास्थ्यके लिअे घातक हैं, जीवनके सौन्दर्यको नष्ट करनेवाली हैं और क्षय जैसी बीमारियोंको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे आक्रमणकी अनुकूलता कर देनेवाली हैं। यदि व्यक्ति और परिवार चाहें, तो वे अिनमें से कअी अनिष्ट तत्त्वोंको सहज ही नष्ट कर सकते हैं।

राजरोगीकी दिनचर्यामें नीचे लिखी बातोंका प्राधान्य होना चाहिये — यथासम्भव हवा और प्रकाशके बीच रहना, घरमें हवा और अुजेलेका पूरा-पूरा प्रबंध होना, घरकी बस्तीके हिसाबसे स्थानकी विपुलता रहना, शरीरके स्वास्थ्यको टिकाने और बढ़ानेवाला आहार करना, मनको शान्त और शरीरको अक्लान्त रखना, सब प्रकारकी अतिका त्याग करना, निश्चिन्त रहना और निष्ठापूर्वक नियमोंका पालन करना। शरीरको क्षयसे अलिप्त रखनेमें अिन सबकी सहायता बहुत अुपयोगी होती है। अपनी मर्यादामें रहकर परिश्रम करनेका आग्रह भी क्षयको दूर रखनेमें सहायक होता है।

राजरोगीकी यह दिनचर्या किसी बीमार और दुर्बलकी दिनचर्या नहीं है। यह बल और अुत्साहसे युक्त है और यही वजह है कि अिसकी सहायतासे क्षय जैसे घातक रोगसे बचने और टिकनेका अवसर प्राप्त होता है। जो क्षयकी चपेटमें नहीं आये हैं, अुनके लिअे तो यह अत्यन्त प्रभावशाली है। राजरोगीकी दिनचर्यामें प्राकृतिक नियमोंके अनुकूल तत्त्वोंकी विपुलता रहती है। कुदरतके कानूनके मुताबिक चलकर जीवनमें जितनी ठास और विशिष्ट सिद्धि प्राप्त की जाती है, अुतनी अुन कानूनोंको तोड़ने या अुनकी अुपेक्षा करनेसे नहीं मिलती।

३०

पूर्णाहुति

क्षयके सम्बन्धमें जितनी बातें अब तक निश्चित रूपसे जानी गअी हैं, वे संक्षेपमें अिस प्रकार हैं:

संसारकी सुसंस्कृत प्रजाअें प्राचीन कालसे क्षयके संसर्गका अनुभव करती आअी हैं।

क्षय हर अुम्रके मनुष्योंको होता है, जवानीमें वह ज्यादा पाया जाता है।

क्षयके दो प्रकार हैं: अुग्र और मंद। अुग्र क्षय असाध्य होता है और मन्द क्षय साध्य।

क्षय जल्दीसे परख लिया जाय, तुरन्त अुसका अिलाज शुरू हो जाय और वह पर्याप्त समय तक कराया जाय, तो रोग साध्य रहता है। विलम्ब, असावधानी और चिकित्साके आवश्यक साधनोंका अभाव साध्य क्षयको भी असाध्य बना देता है।

क्षयरज और क्षयग्रंथियाँ तो बेशुमार लोगोंकी देहमें पाअी जाती हैं। लेकिन क्षयके शिकार कुछ थोड़े ही लोग होते हैं।

क्षयग्रंथियोंकी अुपस्थितिका अर्थ हमेशा क्षयरोग नहीं होता।

'प्रतिकूल परिस्थिति' क्षयकी जननी है।

क्षयके अुपचारमें दवा, पिचकारी या अन्य अैसे अुपाय विशेष अुपयोगी नहीं होते। क्षयकी कोअी अचूक दवा अभी तक जानी नहीं गअी।

क्षयकी चिकित्साका अर्थ है, क्षयरोगीकी दिनचर्याका हितकारक निर्माण, आहार-विहार-योगका परिपूर्ण पालन।

जब तक बुखार वगैरा विषजन्य लक्षण मौजूद रहें, तब तक रोगीके लिअे चिकित्साके नीचे लिखे अंग प्रधान और अनिवार्य माने जाने चाहिये:

१. सम्पूर्ण आराम

२. हजम होने लायक पुष्टिकारक खुराक

३. ताज़ी हवा और प्रकाशमें निवास

४. नियमपालन

५. निश्चिन्त मनोदशा

और, बाहरी लक्षणोंके लुप्त होने पर

६. क्रमानुसार व्यायाम।

क्षयका अर्थ है, शक्तिका दिवाला। योजनापूर्वक व्यायाम करते हुअे जब तक अुत्तरोत्तर शक्ति प्राप्त होती रहे, तब तक अिलाज जारी रखना चाहिये।

क्षयकी चिकित्सामें स्थान या प्रदेशका विशेष महत्त्व नहीं। क्षय सभी स्थानोंमें होता है और सर्वत्र अुसका अुपचार भी किया जा सकता है।

अेक बार जागा हुआ क्षय फिर-फिर जागता है।

क्षयकी पुनर्जाग्रतिको रोकनेके लिअे अुत्तरजीवनमें, आवश्यक हेर-फेरके साथ, क्षय पर विजय पानेवाली दिनचर्याको ही जारी रखना चाहिये। श्रममें मर्यादाका पालन करनेसे क्षयकी जाग्रति रुकती है।

चेतन-रजके विरुद्ध युद्ध ठाननेसे क्षयकी रोक नहीं होती। अुसके लिअे तो व्यक्ति और समाजकी 'प्रतिकूल परिस्थिति' में सुधार करना चाहिये। दिनचर्याका सारा क्रम फिरसे अिस तरह बैठाना चाहिये कि वह अधिकसे अधिक हितकर हो। मर्यादित श्रमकी महत्ताको स्वीकार करके तदनुकूल आचरण भी करना चाहिये।

३१

नात्मानमवसादयेत्

क्षयके अिस शब्द-चित्रको पढकर यदि राजरोगी निराशामें डूब जाय और अपने जीवनको तुच्छ व पामर समझकर अुसे धिक्कारने लगे, तो यह अुसके लिअे अुचित न होगा। कोअी कारण नहीं कि वह अैसा करे। जीवन सदा सबका सरल नहीं रहता, न किसी अेक ही तरीकेसे वह सबके लिअे अटपटा या अुलझनवाला बनता है। क्षय तो जीवनको जटिल और विषम बनानेमें अेक निमित्त-मात्र होता है। जीवनकी समता सदा कसौटी पर चढी रहती है। अुसे स्थिर बनाये रहना ही जीवन है। यह कसौटी कभी अपने अतिशय प्रिय स्वजनके अकाल वियोगके रूपमें सामने आती है, कभी राजासे रंक बनानेवाली आपत्तिके रूपमें और कभी क्षय जैसे रोगके आक्रमणके रूपमें। अिन छोटे-मोटे, क्षणिक या दीर्घजीवी विघ्नोंका प्रतिकार करनेमें और मनके सन्तुलनको बनाये रखनेमें ही जीवनकी महत्ता है। बडे-बडे विघ्न अुपस्थित होकर मनुष्यकी जीवन-दिशाको बदल देते हैं, अुसकी आशाओं और अभिलाषाओंको छिन्न-भिन्न कर डालते हैं, लेकिन वे हमेशा टाले नहीं जा सकते। अुनके मोडे मुड जानेसे, झुकाये झुक जानेसे, अुनका आघात सह्य बनता है और पुनः तनकर खडे होनेका अवसर हाथ आता है।

चलता-फिरता राजरोगी कोअी हारा-थका मनुष्य नहीं होता। अनेक धैर्यशाली स्त्री-पुरुष क्षयग्रस्त होकर भी संसारको अपना ऋणी बना गये हैं। अितिहासको देखनेसे पता चलता है कि जीवनके विविध क्षेत्रोंमें अनेक क्षयरोगी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। अुनमें से कअियोंका क्षय पूरी तरह जाग्रत हो चुका था, और कअियोंका डगमग अवस्थामें था। रस्किन और थॉरो, लैनाक, कॉक और टुडो, अिमरसन और स्टीवेन्सन,

ब्राअुनिंग और ब्रोंटे, गेटे और रूसो, शेली और कीट्स, टॉल्स्टॉय और गॉर्की आदि अनेक अमर विभूतियाँ क्षयके ससर्गमें आ चुकी थीं ।

जिस तरह संसारके अनेक अल्पज्ञात और अज्ञात व्यक्ति अपने-अपने छोटे या वड़े क्षेत्रमें अपनी खुशवू छोड़ जाते हैं, अुसी तरह क्षयरोगी भी यदि चाहे तो अपने जीवनकी रचना अैसी कर सकता है, जिससे वह दुनियाके लिअे वोझ न वने और अपने हिस्सेके कामको भली-भाँति करके अपनी महकसे सवको मुग्ध कर दे । मनुष्य जो कुछ करता है, अुससे अुसका वड़प्पन अुतना नहीं आँका जाता, जितना अिस वातसे आँका जाता है कि अुसे जो कुछ करना पड़ता है, अुसको वह किस तरह करता है । राजाके अुद्यानमें खिलनेवाले गुलावकी खुशवूकी क़द्र होती है, जंगलके गुलावकी खुशवू यो ही नष्ट हो जाती है । परिस्थितिके कारण अेक प्रकाशित हो अुठता है, दूसरा अप्रकट और अज्ञात रहता है; फिर भी खुशवू दोनोंमें अेक ही होती है । सूर्य यदि प्रकाशपुंज है तो चिनगारीमें भी प्रकाशका अभाव नहीं । राजरोगी चिनगारीसे गया-वीता तो नहीं होता । वह कोयलकी तरह चहुँ ओर कुहुक चाहे न सके, फिर भी जहाँ कहीं रहे, वहाँ अपने संयत और मर्यादित आचरण द्वारा अपना प्रकाश अपने आसपास फैला सकता है और नियम-पालनकी महत्ता सिद्ध कर सकता है । मनुष्य अेक भावुक प्राणी है, अपनी भावनाशीलताके कारण ही वह दूसरे प्राणियोंसे भिन्न पड़ता है । क्षयरोगी भी सदा भावुक वना रह सकता है । रोगके कारण अुसकी मनुष्यता नष्ट नहीं हो जाती, अुसका जीवन धिक्कारयोग्य नहीं वन जाता, वल्कि संसारके लिअे वह सजगता और सहिष्णुताका अेक जीता-जागता अुदाहरण वन जाता है ।

'पूर्ति'*

शस्त्रक्रिया

राजरोग यानी क्षय अेक अटपटा रोग है। अुसे पैदा करनेवाली चेतन-रज शरीरमें प्रवेश करती है और अड्डा जमाती है, लेकिन आदमीको अुसका पता नहीं चलता। बहुतोंके लिअे यह अज्ञात स्थिति जीवनभर बनी रहती है। जब चेतन-रज घर करती है, तो फेफड़ोंके दूसरे हिस्सोंमें बहुत बारीक तब्दीलियाँ होती हैं और वैसा होने पर अगर वहाँ चेतन-रजका संचार हो जाता है, तो अुसका कुछ दूसरा असर होता है और रोगके प्रगट होनेकी अनुकूलता मिलती है। अितना होने पर भी रोग सबमें दिखाअी नहीं देता। जब अतिशयता के फलस्वरूप शरीरकी जीवनी-शक्ति क्षीण होती जाती है और यह हालत बनी रहती है, तो चेतन-रज जोर लगाती है और रोग प्रगट होता है। तेज नाड़ी, सुस्ती, शोष, बुखार, खाँसी, कफ, खूनकी कै और शूल जैसे बाहरी लक्षणों और फेफड़ोंसे निकलनेवाली आवाजका बदलना वगैरा अन्दरूनी लक्षणोंके प्रकट होनेसे पहले फेफड़ोंमें रोगकी सूचक खराबियाँ शुरू हो चुकती हैं और अितनी धीमी चालसे बढ़ती रहती हैं कि पता नहीं चलता। अिसकी वजहसे लक्षणोंके प्रकट होनेसे पहले कअी महीने और कभी-कभी अेक दो साल तक बीत जाते हैं, और यों अुसके अस्तित्वके बारेमें मनमें शंका तक नहीं पैदा होती। लेकिन 'अेक्स-रे' की मददसे अिसे बहुत कुछ जान लिया जाता है। लक्षणोंके पैदा होनेसे पहले जब 'अेक्स-रे' के जरिये पता चल जाता है, तो थोड़े समयमें पुरअसर अिलाजकी पूरी संभावना रहती है। लेकिन अिस तरह 'अेक्स-रे' क्वचित् ही लिया जाता है। ज्यादातर तो जब लक्षण प्रकट हो जाते हैं, तभी क्षयका और अुसके अिलाजका विचार किया जाता है। जहाँ रोगका संशय पैदा होते ही

---

* यह पूर्ति १९४४ के दिसम्बरमें लिखी गअी है।

तुरत 'अेक्स-रे' का अुपयोग किया जाता है, वहाँ रोगका निदान जल्दी हो जाता है और अिलाज शुरू करनेमें बेकारका समय नहीं जाता। राजरोगका निदान करनेमें 'अेक्स-रे' अुपयोगी साधन है। दूसरा महत्त्वका साधन रक्तकी परीक्षा है। अिसे 'सेडीमेण्टेशन टेस्ट' (sedimentation test) कहते हैं। अिससे शरीरके अन्दर रही हुअी किसी भी तरहकी रोग पैदा करनेवाली सक्रिय चेतन-रजका पता चल जाता है। अिससे रोगका पता नहीं चलता, लेकिन अिसके साथ 'अेक्स-रे' के नतीजे पर विचार करनेसे क्षय-सम्बन्धी निर्णय पक्का हो जाता है। अेक बार रोगका निश्चय हो जाने पर अिस कसौटीके जरिये रोगमें होनेवाली घट-बढ़का पता, दूसरा कोअी सूचन मिलनेसे पहले, निश्चित रूपसे लग जाता है।

राजरोग कठिन रोग है। किसी-किसीमें वह शुरूसे ही चौंकानेवाली हालतमें पाया जाता है। लेकिन ज्यादातर अूपर-अूपरसे वह अितना सादा मालूम होता है कि आदमी धोखा खा जाता है — गाफिल रहता है। नतीजा यह होता है कि जो करना है सो किया नहीं जाता, न करनेकी बातें की जाती हैं और रोगको अनजाने जोर पकड़नेकी अनुकूलता मिल जाती है। अिसके सादेपनके प्रति अुदासीन रहना पुसाता नहीं। यह किस समय जोर पकड़ लेगा और अजेय बन जायगा, सो कहा नहीं जा सकता। अिस पर काबू पानेके लिअे तुरन्त कोशिश की जाय, तभी सफलता मिल सकती है। राजरोगका निवारण करनेके लिअे सबसे अधिक प्रभावशाली और अनिवार्य अुपाय 'आहार-विहार-योग' है। अिसके यथोचित सेवनसे बहुतेरे असमयमें मौतकी शरण जानेसे बचे हैं।

फिर भी राजरोग अनेक रूपोंवाला रोग है। कुछ लोगोंके शरीरमें वह छिपे-छिपे बहुत नुकसान करता रहता है, और फिर प्रकट होता है; और कुछको 'आहार-विहार-योग' से संतोषजनक और पर्याप्त लाभ नहीं होता या अुसमें बहुत देर लग जाती है। अैसोंके लिअे अनुकूल शस्त्र-क्रियाका अुपयोग करनेसे राजरोगको हटानेकी मुश्किल आसान हो जाती है। शस्त्रक्रिया 'आहार-विहार-योग' की अुपयोगी पूर्ति सिद्ध हुअी है।

अिसकी मददसे बहुतेरे तन्दुरुस्ती हासिल करते हैं और काम-धन्धेसे लग जाते हैं। बहुतोंकी ज़िन्दगी बढ़ जाती है। अिलाजमें समय कम लगता है और सुधार अधिक टिकाअू साबित होता है।

फेफड़ोंके क्षयसे सम्बन्ध रखनेवाली चीरफाड़को अंग्रेजीमें 'कोलैप्स थेरापी' (collapse therapy) कहा जाता है। यह कअी प्रकारकी होती है, लेकिन सब प्रकार सबके लिअे अुपयोगी नहीं होते। किस बीमारको कौनसा तरीक़ा माफिक आयेगा, अिसका फैसला तो अिस अिल्मका जाननेवाला सर्जन ही कर सकता है। बाज दफा अेक ही बीमारके लिअे अेकसे ज्यादा तरीकोंको अिस्तेमाल करना पड़ता है और अुसका भी कोअी खास सिलसिला नहीं होता। सारा आधार रोगके स्वरूप और विस्तार पर और रोगीकी साधारण शारीरिक स्थिति और शक्ति पर रहता है।

क्षयके अिलाजमें आराम सबसे महत्त्वकी चीज है। मन, वाणी और शरीरको जितना ज्यादा आराम दिया जाता है, अुतना ही ज्यादा आराम फेफड़ोंको मिलता है। अिस तरह दिया जानेवाला आराम बाज दफा रोगको दबानेमें काफी साबित होता है और बाज दफा कम पड़ता है। शस्त्रक्रिया आरामकी कमीको दूर करनेमें मदद पहुँचाती है।

फेफड़ोंका काम है, साँस लेना और छोड़ना। साँस लेते समय फेफड़ा खुलता है और छोड़ते समय बंद होता है। यह सिलसिला बराबर चलता रहता है। अिसलिअे रोगके घावोंको भरनेके लिअे जो आराम ज़रूरी है, वह कभी-कभी अकेली विश्रान्तिसे पूरा-पूरा नहीं मिलता। अगर फेफड़ेको काम करनेसे रोका जा सके, तो रोग पर काबू पाना आसान हो जाय। चीरफाड़की मददसे यही किया जाता है। अिसमें फेफड़ा सिकुड़कर दबता है और अुसके तन्तुओंमें शिथिलता आती है। फेफड़ेके दबनेसे अुसका रोगवाला हिस्सा निचुड़ जाता है। रोगकी रज बाहर निकल जाती है या कैद हो जाती है और घाव भर जाते हैं। जैसी चीरफाड़, वैसा नतीजा। कुछ चीरफाड़ फेफड़ेको सिकोड़नेवाली

होती है और कुछ अुसमे शिथिलता पैदा करती है । कुछमें फेफड़ोंकी हरकतको लौटाया जा सकता है और कुछमें की हुअी तब्दीलियाँ कायम रहती हैं ।

फेफडा पसलियोके पिंजरेमे वैठाया गया है । पसलियॉ 'पेरी-ऑस्टियम' (periosteum) मे जडी होती हैं । अुनके नीचे 'प्लूरा' (pleura) की दो तहें होती हैं, और अिन दो तहोंके वीच खाली जगह रहती है । 'प्लूरा' के नीचे फेफडा होता है और फेफडेमे क्षयरोग अलग-अलग रूपोमें नजर आता है । जव वह दागके रूपमे होता है, तो कुछ जगहोंमे छोटी-वड़ी दरारें—विवर (cavity)—पड़ जाती हैं । जिन तन्तुओंसे फेफडा वना है, चेतन-रज जव अुन्हींका नाश करने लगती है, तो अुनकी जगह खाली पडती जाती है और वहॉ दरारें वन जाती हैं । नाशका यह सिलसिला जारी रहता है, तो दरारें वडी होती जाती हैं और वहॉ चेतन-रजका केन्द्र क़ायम हो जाता है । अिन दरारोंसे देहको भयमुक्त करनेके लिअे चीरफाडकी खास जरूरत रहती है । अुससे दाग़ भी मिट जाते हैं ।

चीरफाड़का मामूली मतलव तो यही लिया जाता है कि जो रोगवाला भाग है, अुसे काट डाला जाय । 'अेपेण्डिक्स' (appendix) में सड़न पैदा हो जाती है, तो अुसे निकाल ही डालते हैं । 'कैन्सर' (cancer) होता है, तो अुसकी गॉठ काट डाली जाती है । लेकिन क्षयमे अैसा नहीं हो सकता—फेफडेके रोगवाले भागको काट डालनेका अेक विचार चल पड़ा है और कहीं-कहीं अुसके प्रयोग भी होते हैं, लेकिन अभी वे अुपचारकी कक्षा तक नहीं पहुँचे हैं । क्षयके लिअे जो चीरफाड होती है, अुसमे रोगवाला हिस्सा अछूता ही रहता है । खास क्रियामे भाग लेनेवाले दूसरे अगों—अवयवों—पर यह क्रिया की जाती है । अिसकी वजहसे अिसमें विविधता आ जाती है । सभी तरहकी शस्त्रक्रिया अेक-से तारतम्यवाली नहीं होती । कुछ कठिन होती हैं, तो कुछ हलकी—आसान । रोगके वलावलका विचार करके किसी अेक प्रकारकी

या अेकसे अधिक शस्त्रक्रियाका निश्चय किया जाता है। किसीके अेक फेफडेमें रोग होता है, तो किसीके दोनो फेफडोंमें। जब दोनों फेफडोंमें रोग दिखाअी पडता है, तो जिसमें ज्यादा होता है अुसी पर शस्त्रक्रिया की जाती है। अगर अेक फेफड़े पर की गअी शस्त्रक्रिया गुणकारी सिद्ध होती है, तो अुसका असर दूसरे फेफड़े पर भी दिखाअी देता है। किसी-किसीके दोनो फेफडों पर शस्त्रक्रिया करनी पडती है। चीरफाडमें जोखिम तो रहती ही है, लेकिन निपुण और अनुभवी सर्जनके हाथोंमें आदमी अपनेको सलामत पा सकता है।

क्षयसंबंधी कअी तरहकी शस्त्रक्रियाअें आज प्रचलित हैं। लेकिन वे सब अेक-सी अुपयोगी नहीं मानी जातीं। आम तौर पर दस क्रियाअें मानी गअी हैं। अुनमें तीन खास तौर पर फलदायी सिद्ध हुअी हैं, अिसलिअे अुनका प्रचार भी ज्यादा है। अुनके अंग्रेजी नाम ये हैं: 'न्युमोथॉरेक्स' (pneumothorax), 'फ्रेनिक नर्व पैरेलिसिस' (phrenic nerve paralysis) और 'थोरेकोप्लास्टी' (thoracoplasty).

'न्युमोथॉरेक्स' रोगके रूपमें अपने आप पैदा होता है। अतः अुससे अलग दिखानेके लिअे प्रयत्नपूर्वक पैदा किये जानेवाले 'न्युमोथॉरेक्स' को 'आर्टीफीशियल न्युमोथॉरेक्स' (artificial pneumothorax) कहा जाता है। अिसके अंग्रेजीके शुरूके अक्षर लेकर अिसे थोड़ेमें 'अे० पी०' भी कहा जाता है। 'अे० पी०' पैदा करनेमें हमेशा चीरा देनेकी जरूरत नहीं होती। लेकिन अगर प्लूराकी तहें चिपक गअी हों और बीचकी खाली जगह नष्ट हो गअी हो, तो 'अे० पी०' पैदा करना नामुमकिन हो जाता है, या मनचाहा परिणाम नहीं निकलता। जब तहें चिपक जाती हैं, तो बहुधा 'अे० पी०' का खयाल छोड दिया जाता है। लेकिन क्वचित् दोनों तहोंको अलग करने और अुनके बीचकी जगहको छुडानेके लिअे चीरफाड की जाती है। यह क्रिया बहुत नाजुक है और निरुपाय होने पर ही की जाती है। डॉक्टरोंने अिने

'न्युमोनोलाअिसिस' (pneumonolysis) कहते हैं और दस क्रियाओंमें अिसकी गिनती होती है।

जब 'अे० पी०' का अिलाज करने जैसा दीखता है, तो दो तहोंके बीचकी खाली जगहमें साफ की हुअी हवा सूअीके जरिये भर दी जाती है। हवाका दवाव फेफड़े पर पड़ता है और फेफड़ा दवता है। फेफड़ेका कितना हिस्सा दवता है, सो कहना कठिन है। अगर दवाव पुरअसर सावित होता है, तो वहुत करके रोगवाला भाग दवता है और रोगको अंकुशमें लाना संभव हो जाता है। अेक ही वार हवा भरनेसे फेफड़ा दवता नहीं और हवा भी ज्यादा देर तक टिकती नहीं। जब हवा पच जाती है, तो शुरूमें दो-दो, तीन-तीन दिनके अंतरसे भरनी पड़ती है। धीरे-धीरे वीचकी जगह वढ़ाअी जाती है और फिर हफ्ते या पखवाड़ेमें अेक वार हवा भरनेसे काम चलता है। अिसमें सवके लिअे अेकसा नियम नहीं होता। किसीमें हवा जल्दी पच जाती है, किसीमें ज्यादा देर तक टिकती है। सवके लिअे समान चीज़ अेक है: फेफड़ों पर हवाका दवाव सतत रहना चाहिये। अिसके लिअे हवा न तो कम होनी चाहिये और न अुसका विलकुल अभाव होना चाहिये। हवाके अभावमें फेफड़े परका दवाव हट जाय, तो दवा हुआ फेफड़ा खुल जाय और रोग जाग अुठे। जिन दिनो हवा भरी जाती है, अुन दिनों साधारणतः आराम करना ज़रूरी है।

जब हवाके दवावसे फेफड़ा दवा रहता है, तो दवा हुआ हिस्सा साँस-अुसाँसकी क्रियामें नामको ही शरीक होता है। मगर अुससे वेचैनी पैदा नहीं होती और रोगवाले हिस्सेको आराम मिलता है। दाहिने फेफड़ेके तीन हिस्से होते हैं और वायेंके दो। अिन्हें अंग्रेजीमें 'लॉब्स' (lobes) कहते हैं। जब तक पाँचमें से दो हिस्से नीरोग हैं और साँस लेने-छोड़नेका काम ठीकसे करते हैं, तब तक जीनेमें दिक्कत नहीं होती; और मामूली तौर पर अैसा कामकाज करनेमें, जिसमें जोरकी मेहनत न पड़ती हो, कोअी हर्ज नहीं होता।

हवासे फेफड़ेके दबते ही रोग फौरन दब नहीं जाता। अुससे तो सिर्फ़ घाव भरनेके लिअे ज़रूरी अनुकूलता ही मिलती है। क्षयके बारीक घावोंको भरनेमें देर लगती है और फेफड़ेमें जो दरारें पड़ गअी होती हैं, वे फेफड़ेके दबने पर धीरे-धीरे सिकुड़ने लगती हैं। अूपर-अूपरसे वे बन्द हुअी-सी, भरी-सी भी दीख सकती हैं, लेकिन असलमें वे धीरे-धीरे ही भरती हैं। हवा भरनेकी क्रिया कब तक जारी रखी जाय, अिसका आधार अंदर होनेवाले सुधारों पर रहता है। फिर भी अिसमें ज्यादा नहीं, तो कमसे कम दो साल लग सकते हैं। लेकिन अिससे फायदा हमेशाके लिअे हो जाता है। जल्दबाजी करके हवा भरना छोड़ देनेसे घाव भरनेके काममें रुकावट पैदा होती है, फेफड़ा खुल जाता है, और रोग फिर जागता नजर आता है। जितनी खबरदारीके साथ फेफड़ेको बन्द किया जाता है, अुतनी ही खबरदारी अुसे खोलते समय भी रखनी पड़ती है। जब 'अेक्स-रे' वगैराले पता चलता है कि रोग शान्त हो चुका है, तभी हवा भरनेका काम धीरे-धीरे घटाया जाता है और अन्तमें छोड़ दिया जाता है। फिर तो फेफड़ा पहलेकी तरह काम करने लगता है।

'अे० पी०' ने गुण किया, तो रोग काबूमें आने लगता है, वजन और ताकत बढ़ती नजर आती है और समय पाकर काम-धन्धा करनेकी योग्यता भी आ जाती है।

'अे० पी०' के जरिये अिलाज कराना यों आसान मालूम होता है, लेकिन अिसके जरिये हरअेकका अिलाज बिना रोकटोक या रुकावटके नहीं हो पाता। बाज़ दफा फेफड़ा जितना चाहिये अुतना दबता नहीं और रोगका फैलाव बढ़ता रहता है। कभी-कभी हवा भरनेकी खाली जगहमें रोगयुक्त पानी भर जाता है। अगर यह पानी जल्दी नहीं सूखता, तो अिसे बाहर निकाल लेना पड़ता है। बाज दफा पानी फिर-फिर भर जाता है। कभी-कभी प्लूराकी तहें मोटी हो जाती हैं, और चिपक भी जाती हैं। अैसी तमाम हालतोंमें हवा भरनेका काम

रुक जाता है और फेफड़ोको दवाये रखनेका काम वढ़ जाता है और मुश्किल वन जाता है । जव हवा जरूरतसे ज़्यादा भर जाती है, या सूअी फेफड़ो तक पहुँच जाती है, तो जी घवराने लगता है । अैसे समय भरी हुअी हवा कम की जाती है । रुकावटें अनसोची आती हैं । अुन्हें पहलेसे रोकनेका कोअी अुपाय हाथमें नहीं रहता । और अैसेमे जव वे अटल हो वैठती हैं, तो 'अे० पी०' छोडकर दूसरा अिलाज शुरू करनेकी नौवत आ जाती है । 'अे० पी०' की सफलताका आधार मनुष्यकी कुशलता पर ही नहीं रहता । शरीरमे अनजाने जो कुदरती हेरफेर होते रहते हैं, अुनका असर कोअी मामूली असर नहीं होता । महज रुकावट या विघ्नके डरसे 'अे० पी०' का विचार छोड़ा न जाय । 'अे० पी०' की अुपयोगिता वहुतों पर सिद्ध हो चुकी है । 'आहार-विहार-योग' की वह अेक अुपयोगी पूर्ति है ।

प्लूराकी तहोके वीचवाली खाली जगहमें जिस तरह हवा भरकर फेफड़ोको दवाया जाता है, अुसी तरह कभी-कभी हवाके वदले 'गॉमेनॉल' (gomenol) जैसा तेल भी भरा जाता है और अुसके ज़रिये फेफड़े पर दवाव डाला जाता है । हवाकी तरह तेल अुड नहीं जाता, अिसलिअे अुसे वार-वार भरना नहीं पड़ता । अिस तरह तेल भरनेकी क्रियाको अंग्रेजीमे 'ओलियोथॉरेक्स' (oleothorax) कहा जाता है । यह भी दस क्रियाओंमें से अेक है । हवाके वदले तेलका अुपयोग करनेसे कोअी खास वात नजर नहीं आअी । तेल अेक विजातीय द्रव्य है और अुसे पचाना मुश्किल होता है । अिसका ज्यादा प्रचार नहीं है ।

अिधर क्षयके लिअे 'फ्रेनिक नर्व पेरेलिसिस' नामक अेक दूसरी महत्त्वपूर्ण शस्त्रक्रियाका विशेष प्रचार हुआ है । अिसे 'फ्रेनिकोटॉमी' (phrenicotomy) भी कहा जाता है । फ्रेनिक नामकी अेक नस गलेके पाससे गुजरती है । अुसका सम्वन्ध 'डायाफ्राम' (diaphragm) के साथ है । 'डायाफ्राम' फेफडोंके नीचे और पेटके अूपरवाले भागमे

अेक स्नायु है और साँस लेनेकी क्रियामें अुसका अुपयोग होता है। जब फ्रेनिक नसको निकम्मा बना दिया जाता है, तो डायाफ्रामका काम बन्द हो जाता है, वह अूपरको अुठ जाता है और फेफड़ों पर दबाव डालता है। अिससे फेफड़ा भी काम करना बन्द कर देता है, अुसमें स्थिरता आ जाती है और अुसके तन्तु शिथिल हो जाते हैं। जब रोगका आरंभ ही हुआ होता है और फेफड़ेमें दरार पड़ चुकती है, लेकिन छोटी होती है, तभी समय रहते यह शस्त्रक्रिया करवा ली जाय, तो रोग पर अुसका अच्छा असर होता है। अिससे फेफड़ा सिकुड़ता नहीं, लेकिन रोगका जोर कम हो जाता है और घाव भी भरता है। छोटी-छोटी दरारें बन्द हो जाती हैं और वे रुझा जाती हैं। आरामके क्रमको बनाये रहनेमें अिस तरीकेसे अच्छी मदद मिलती है। अकेले आरामसे जो फायदा पहुँचता है, अुससे बढ़कर फायदा आरामके साथ अिसका मेल हो जानेसे मिलता है और समय भी बचता है। आरामकी यह अेक बहुत अुपयोगी पूर्ति है। कभी अैसा न करनेकी परिस्थिति भी पैदा हो जाती है। जैसे, रोग बहुत जोर पर हो, फैल चुका हो और दरारें भी बड़ी-बड़ी हों, तो फ्रेनिक नस पर की गअी शस्त्रक्रिया कम काम आती है। क्षयके अिलाजमें समयका तत्त्व बहुत महत्त्व रखता है। आज जिस अुपायके आजमानेसे मनचाहा फल मिल सकता है, अुसे मुलतवी कर देने और बहुत देर बाद हाथमें लेनेसे अिच्छित फल शायद मिले, शायद न भी मिले।

'न्युमोथॉरेक्स' का अिलाज पूरा होनेके बाद बाज़ दफा बीमारीके फिर लौटनेका डर रहता है। अैसे वक्त अगर यह शस्त्रक्रिया करा ली जाती है, तो 'न्युमोथॉरेक्स' से मिले लाभको कायम रखा जा सकता है। थोरेकोप्लास्टीके अखीरमें जो दरार रह जाती है, अुसे भरने या बन्द करनेके लिअे भी यह शस्त्रक्रिया अुपयोगी होती है। अगर फेफड़ोंसे खून बहने लगे, तो वह अिससे रोका जाता है। अिसकी अितनी सारी अुपयोगिता है और अिसमें नुकसान या खतरा नाम ही का है।

अिस शस्त्रक्रियामें गलेके पासवाली जगह खोली जाती हैं और फ्रेनिक नसको पहचानकर अुसे कुचल दिया जाता है। अिससे नस बेकार हो जाती है। अिसके करनेमें कुछ ही मिनट लगते हैं। अिस तरह बेकार बनाअी हुअी नस पर अिसका असर करीब छः महीनों तक रहता है। अिससे डायाफ्राम और फेफड़ेका काम भी बन्द हो चुकता है, जिससे शरीरकी सरक्षक शक्ति आसानीसे रोगका मुकाबला कर सकती है। छः महीनोंकी यह मुद्दत कम ज्यादा भी हो जाती है, यहाँ गणितके-से निश्चित नियम काम नहीं देते। छः महीनोके अंतमें नस खुल जाती है और पहलेकी तरह काम करने लगती है। अिससे डायाफ्रामकी और फेफडेकी सुस्ती अुड जाती है और वे भी काम करने लगते हैं। फ्रेनिक नसको बेकार बनानेसे जो फल निकलनेवाला होता है, वह अुसका असर कम होनेसे पहले ही मालूम हो जाता है। नसको सुन्न बनानेके बाद भी रोगका ज़ोर कम न हो, बल्कि वह बढ़ता नजर आये, तो अुसका मतलब यह हुआ कि अकेले अुससे काम नहीं बनेगा। अुसके साथ कुछ दूसरे अिलाज भी करने होंगे। फ्रेनिक नसको कुचलकर बेकार बनानेके बदले अुसे काटकर हमेशाका अेक अैब खडा कर लेना अिष्ट नहीं।

अिस पर यह पूछा जा सकता है कि पहले 'अे० पी०' पैदा की जाय, या फ्रेनिक नसको सुन्न बनाया जाय? लेकिन अिन दोनोंके बीच कोअी सबंध नहीं। सफलता पानेके लिअे आवश्यक अनुकूलता दोनोंमें हमेशा अेक-सी नहीं होती। फ्रेनिक नसको सुन्न बनानेमें शायद ही कोअी रुकावट पैदा होती हो। लेकिन हवा भरनेमें रुकावटें पेश होती हैं। जब बीमारी शुरु ही हुअी होती है, तब फ्रेनिक नसको बेकार बना देनेसे काम बन सकता है और समय भी कम लगता है। जब हालत यह होती है कि फेफड़ा सिकुड़कर दबे नहीं तब तक बीमारी दूर न हो, तब हवा भरनेकी क्रिया ज्यादा अुपयोगी साबित होती है और वह पहले कर ली जाती है। हो सकता है कि अिलाज शुरु करते समय दो तहोंके बीचकी जगह खाली हो और अुसमें हवा भरी जा

सके। लेकिन हो सकता है कि समय पाकर वह मिट जाय और फ्रेनिक नसको निकम्मा बनानेसे फायदा न हो। अैसे समय 'अे० पी०' पैदा करना भी नामुमकिन हो जाता है। फलतः 'थोरेकोप्लास्टी' जैसे अिलाजकी जरूरत पड सकती है। अिस परसे यह भी नहीं कहा जा सकता कि अिलाज हमेशा 'अे० पी०' पैदा करनेकी कोशिशसे शुरू करना चाहिये। सारांश, अिसका कोअी अेक खास सिलसिला तय नहीं किया जा सकता। अिसका फैसला तो हरअेक बीमारकी हालतको देखकर ही किया जा सकता है। संभव है कि किसी पर अेकके बाद अेक दोनों क्रियाअें करनी जरूरी हो जायँ। जब हवा भरी जाती हो, तब बीचमें कोअी रुकावट खडी हो जाय और हवा न भरी जा सके, तो अुसे छोडकर फ्रेनिक नसको बेकार बनानेकी बात सोचनी चाहिये अथवा फ्रेनिक नसको निकम्मा बना देनेके बाद भी रोग बढता ही जाता हो, तो 'अे० पी०' का विचार किये बिना छुटकारा नहीं। जब किसी अनुभवी और कुशल सर्जनकी सतत देखरेखमें यह सब होता रहता है, तब रोगीको अिसकी चिन्ता करनेकी कोअी जरूरत नहीं होती। किसी पर अेक तो किसी पर दूसरी क्रिया करना अुचित मालूम होता है और जब अेक क्रिया असफल हो जाती है, अथवा परिणामकी दृष्टिसे अुसमें बहुत ज्यादा समय लगता है, तो अुसके बदले दूसरी क्रिया की जाती है।

'थोरेकोप्लास्टी' क्षयसंबंधी अेक बडी कडी और कठिन शस्त्रक्रिया है। यह शस्त्रक्रिया हर किसी डॉक्टरसे नहीं कराअी जा सकती। अिन शस्त्रक्रियाके मँजे हुअे अभ्यासी और रात-दिन अिसीमें रचेपचे रहनेवाले कुशल सर्जनसे जब यह काम कराया जाता है, तभी आदमी निर्भय रहता और अच्छा परिणाम पा सकता है।

क्षयकी सार-सँभालमें आराम हरअेक अवस्थामें जरूरी है। जब आरामके साथ-साथ हवा भरी जाती या फ्रेनिक नस निकम्मी बनाअी जाती है, और अुसका अच्छा असर होनेवाला होता है, तो वह जल्दी दिखाअी पड जाता है। जब अिन अिलाजोंसे फायदा नहीं मालूम होता और

रोगका जोर ज्यों-का-त्यों बना रहता है या बढ़ता नजर आता है, तब 'थोरेकोप्लास्टी' का विचार करना पड़ता है। अिस शस्त्रक्रियामें समय खास महत्त्वकी चीज रहती है। यदि यह अुचित समय पर कर ली जाती है, तो अिससे पूरी सफलता मिलनेकी आशा रहती है। अगर व्यर्थका कालक्षेप होता है और बहुत देरमें की जाती है, तो सफलता कम मिलती है और भावी भयके कारण पैदा हो जाते हैं। विलम्बसे हानि होती है और हानिको टालना कठिन है।

यह शस्त्रक्रिया आखिरी पासा फेंककर देखने जैसी क्रिया नहीं है। अिसका अपना सहज और आन्तरिक गुण है। रोगके शुरूमें अिसका अुपयोग करना अिष्ट नहीं माना जाता, क्योंकि अिससे हलके अिलाज सफलता देते हैं और अुन अिलाजोंसे फफड़ेमें हमेशाके लिअे कोअी तब्दीली नहीं होती। 'थोरेकोप्लास्टी' से स्थायी परिवर्तन होते हैं। अगर ये टाले जा सकें तो टाले जायँ, अिस खयालसे दूसरी शस्त्रक्रियाओंको आजमा लेनेके बाद अिसका अुपयोग अुचित माना जाता है।

जिस तरह रोगके शुरूमें 'थोरेकोप्लास्टी' कराना मुनासिब नहीं माना जाता, अुसी तरह जब रोग हदसे ज्यादा बढ़ जाता है और शरीर खूब कमजोर हो चुकता है, तब भी यह नहीं की जाती। कमजोरीकी हालतमें अिसे सहना मुश्किल हो जाता है। जब रोग फैलनेसे रुका हो, अुसका असर खासकर अेक ही फफड़े पर हो और दूसरे पर हो भी तो बहुत कम हो, फेफड़ोंमें घावको भरनेकी ताक़त हो, हृदय ठीक काम करता हो, साँस लेनेमें साँसको फुलानेवाली रुकावटें न हों और शरीरकी जीवनीशक्ति अच्छी हो, तब अिस क्रियाके करनेसे जोखिम कम रहती है और सुधारकी संभावना अच्छी। अिस शस्त्रक्रियाकी खास अुपयोगिता फेफड़ोंमें पड़ी हुअी दरारोंको बन्द करनेमें है। छोटी-छोटी दरारें फ्रेनिक नसको निकम्मा बना देनेसे या हवा भरनेसे बन्द हो जाती हैं, लेकिन जब किसी वजहसे अैसा नहीं होता अथवा वे बड़ी हो जाती हैं, तब यह शस्त्रक्रिया अच्छी मदद करती है। दरार क्षयकी

चेतन, रजका धाम है। वह गोलावारूदसे भरी हुअी 'नरेटी' जैसी है। वह बढ़ती रहती है, किसी भी समय चेतन रज अुसमेंसे छटककर दूसरी जगह पहुँच जाती है, रोग फैलता है और फेफडा खराब होता रहता है। अतअेव अुसे किसी भी अुपायसे मिटाना चाहिये। जब तक दरार नहीं मिटती, शरीरके नाशका भय हमेशा मँडराता रहता है।

फेफड़ा बारह पसलियोंके पिंजरेमें बैठाया हुआ है। पसलियाँ कमानीका-सा काम करती हैं। अुनके सहारे फेफडा सुस्थित रहता है और साँस लेते समय खुलता और बन्द होता रहता है। पसलियोंका सहारा न हो, तो फेफडा निराधार बन जाय और सिकुडकर दब जाय। फेफडेके सिकुडने पर अुसमें पडे हुअे रोगके दाग भी सिकुडते और भरते हैं और अुनके साथ दरारें भी सिकुडते-सिकुडते बन्द होती और भर जाती हैं। जिस तरह सत्याग्रहमें निर्दोषकी बलि देकर दुष्टताका निवारण करनेकी कल्पना है, क्षयके सम्बन्धमें अिस शस्त्रक्रियाका वही अुपयोग है। पसली नीरोग और निर्दोष होती है। यदि वह काट डाली जाय, तो रोगको वशमें किया जा सकता है। कितनी काटी जाय, अिसका निर्णय यह देखकर ही किया जाता है कि दरार कितनी बडी है और फेफडेमें किस जगह है। जो पसलियाँ दरारके अूपरी हिस्सेमें होती हैं, अुन्हें और अुनके अूपरकी पसलियोंको काटनेकी जरूरत पडती है। बाज़ दफा दरारके नीचेकी पसली भी काटनी पडती है। पसलियाँ सब अेक बारमें नहीं काटी जातीं। ज्यादासे ज्यादा तीन पसलियाँ अेक साथ काटी जाती हैं। अिसलिअे जरूरतके मुताबिक अेक या अेकसे ज्यादा बार शस्त्रक्रिया की जाती है। अेक साथ कअी पसलियोंको काटनेका असर बुरा हो सकता है और अुसमें जानका खतरा भी रह सकता है। शस्त्रक्रिया पीठमें की जाती है। अुसके लिअे रोगी बेहोश नहीं किया जाता, बल्कि दर्दको मारनेके लिअे सूअीके ज़रिये शस्त्रक्रियावाले हिस्सेको सुन्न बना दिया जाता है। अिसकी वजहसे शस्त्रक्रियाके समय बीमार होशमें रहते हुअे भी तकलीफ महसूस नहीं

करता और वह बातचीत भी कर सकता है । पसली पूरीकी पूरी नहीं काटी जाती, बल्कि जितनी जरूरी होती है, अुतनी ही लम्बाअीमें काटी जाती है । कम काटनेसे असर कम होता है । तजरबेसे अिसे काटनेकी लंबाअीका अन्दाज़ लगाया जाता है । रोगी अच्छे मनोबलवाला होता है, तो शस्त्रक्रियाके समय वह चुपचाप पड़ा रहता है; और कभी कहीं दर्द मालूम होता है, तो सर्जनका ध्यान अुसकी तरफ खींचता है और तब तुरन्त ही अुसे मिटानेका अिलाज किया जाता है । पसलियोंको काटकर जब अुन्हें चमड़ीसे अलग करनेके लिअे खींचना पड़ता है, तब थोड़ा दर्द होता है । लेकिन वह जल्दी ही मिट जाता है । रोगी जितनी शान्ति रखता है, अुतना लाभ अुसीको होता है । वह शान्त रहता है तो सर्जनका और अुसके साथियोंका ध्यान सिर्फ़ शस्त्रक्रियामें होता है । लेकिन जब रोगी अपनी कमज़ोरीकी वजहसे नाहक घबराता है और बेचैन बनता है, तो वह सर्जनके ध्यानको बँटाता है और खुद अपना ही नुक़सान कर लेनेकी हालत पैदा कर लेता है । कुशल सर्जनके हाथों 'थोरेकोप्लास्टी' जैसी विकट क्रिया भी सरल बन जाती है और रोगी निर्भयताका अनुभव करता है ।

शस्त्रक्रिया करते समय जो चीरा लगाया जाता है, वह नौ दिनमें भर जाता है । अुसके बाद टाँके तोड़ दिये जाते हैं । अंदरका दर्द घटते-घटते कुछ दिनोंमें बिलकुल मिट जाता है और फिर पट्टी भी छोड़ दी जाती है ।

शस्त्रक्रियासे पसलियाँ कटती हैं, लेकिन रोगका केन्द्र तो फेफड़ेमें होता है, और फेफड़ेको तो छुआ तक नहीं जाता, फिर भी शस्त्रक्रियाका असर वहाँ तक पहुँचता है । फेफड़ा सिकुडता है, और अुतने हिस्सेमें बने हुअे रोगके दाग़ और दरारें भी सिकुडती हैं । लेकिन सिकुड़नेका प्रमाण हमेशा निश्चित नहीं रहता । यह नहीं कहा जा सकता कि सिकुड़न कैसी और कितनी होगी । सिकुड़नेकी क्रिया पूरी होने पर ही अिसका पता चल सकता है । चीर-फाड़के बाद फेफड़ोंका सिकुड़ना शुरू

होता है और वह कअी दिनों तक जारी रहता है। अिसमें भी किसी तरहका कोअी हिसाब नहीं किया जा सकता। तीन हफ्ते बाद 'अेक्स-रे' से देखा जाता है। दरारें दबी न हों, तो कुछ और पसलियाँ काटनेकी बात सोची जाती है। दूसरी बारकी चीर-फाड तीन से चार हफ्तोंके बाद करा लेना अुचित और आवश्यक माना जाता है। अिस बीच घाव भर चुकता है, दर्द मिट चुकता है, और दूसरी कोअी खास मुश्किल या अुलझन पैदा न हुअी हो, तो दूसरी बारकी चीर-फाडके लिअे बीमारकी हालत अच्छी बन चुकती है। अगर दुबारा चीर-फाड करनेमें ढिलाअी होती है, तो अुसका असर कम हो जानेका डर रहता है और दरारको मिटानेमें रुकावट पैदा होती है। जब चीर-फाड दोसे ज्यादा दफा करनेकी जरूरत मालूम होती है, तब भी सब कुछ ठीक हो, तो तीन-चार हफ्तोंके बाद करा ली जाती है।

पीठकी ओरसे पसली काटने पर जब फेफडेमें आवश्यक सिकुडन पैदा नहीं होती और दरार खुली रह जाती है, तब छातीवाला हिस्सा खोलकर पसली काटी जाती है। अिसका फैसला भी तीन हफ्तोंके बाद 'अेक्स-रे' के जरिये किया जाता है।

चीर-फाडसे फेफडा दबता है और बादमें भी दबता रहता है। पसलियोंके कट जानेसे फेफडे पर बाहरका जो दबाव पडता है, अुसका असर अच्छा होता है। अिसके लिअे छातीके अूपरी हिस्से पर वजन रखा जाता है। वजनके लिअे सीसेकी गोलियोंवाली थैली बनाअी जाती है। सीसा पसन्द किया जाता है, क्योंकि अुसके कारण थोडी जगहमें ज्यादा वजन समाता है। वजन तीन पौंडसे शुरू करके धीरे-धीरे बढाया जाता है और जरूरतके मुताबिक ७ पौंड तक ले जाया जाता है। अिसके सिवा चुस्त जाकट पहननी होती है। जिस फेफडे पर शस्त्रक्रिया होती है, अुसके पास जाकटके अन्दर थोडी रुअी गादी रखी जाती है। अिससे बेपसलीवाला फेफडा ज्यादा दबता है। खास सोतेमें अिसका बहुत अुपयोग होता है। जिस ओर शस्त्रक्रिया हुअी

हो, अुसी करवट सोया जा सके, अिसका खयाल रखना ज़रूरी है। अिससे दवाव वढ़ता है, दूसरे फेफड़े तक रोगके फैलनेका डर कम हो जाता है और साँस लेनेमें आसानी होती है। करवटसे सोते समय वगलमें गोल तकिया रखनेसे फेफड़े पर दवाव वना रहता है। रात-दिन सहने जितना दवाव पहुँचता रहता है, तो शस्त्रक्रियाका विशेष लाभ मिलता है। तकियेके वदले झोलीमें करवटके वल सोनेसे भी अच्छा दवाव मिलता है। जव किसी चीज पर अेक ओरसे दवाव पड़ता है, और अुसके दूसरी ओर कोअी स्थिर चीज होती है, तो दवाव अच्छा पड़ता है। दो फेफड़ोंके वीचकी तहको 'मीडिया स्टाअिनम' (mediastinum) कहते हैं। जव वह काफी स्थिर होता है, तो फेफड़ेको दूसरी ओर हटनेको जगह नहीं रहती और अिससे खुद फेफड़ा ही सिकुड़ता है। वज़न और तकिया या झोली दोनों ज़रूरी हैं। यह वाहरी अुपचार वहुत अुपयोगी है। अिससे साँस लेनेमें कठिनाअी नहीं होती, वलग़म थूकनेमें आसानी होती है और खाँसी आने पर फेफड़ा कम अुछलता है, जिससे खाँसीकी थकान कम मालूम होती है। जव खाँसी आये, दरारके अूपरवाले भागको हाथसे दवाना चाहिये, ताकि दरार कम हिले। खाँसीको दवासे रोकनेकी कोशिश करनेमें नुकसान है। वह वलग़मको निकालनेका अुपयोगी साधन है। वलग़मको अन्दर अिकट्ठा न होने देना चाहिये। अुसमें ज़हर होता है, जो जितनी जल्दी वाहर निकले अुतना ही अच्छा है।

'अे० पी०' मे सिर्फ़ हवाके दवावसे फेफड़ा दवता है। लेकिन हवा भरना वन्द करनेसे वह खुल जाता है। थोरेकोप्लास्टीमे परिणाम अिससे भिन्न होता है। अुसमें सीधा दवाव नहीं डाला जाता। लेकिन फेफड़ेकी आधारभूत पसलियोंको निकाल लेनेसे फेफड़ा सहारेके अभावमें सिकुड़ जाता है। यह आधार फिर लौटाया नहीं जाता। अिसलिअे शस्त्रक्रियाके कारण जितना भाग दवता है, वह हमेशा दवा रहता है। वह अपने आप नहीं खुलता और अुसे खोलनेका कोअी अिलाज भी

नहीं है। अुस भागमें फिरसे रोगका संचार भी प्राय: नहीं होता। जो भाग दबता है, वह मुर्दा-सा नहीं बनता। वह जिन्दा रहता है, लेकिन श्वासक्रियामें वह नामको ही शरीक होता है। वहाँ लहूका संचार भी कम होता है। अुसकी अुपयोगिता कम रहती है, फिर भी सरल जीवन बितानेमें अड़चन नहीं आती।

थोरेकोप्लास्टीसे फेफड़ा दबे, दरार भी दबे और 'अेक्स-रे' में दिखाअी भी न दे, तो भी अितनेसे काम पूरा नहीं होता। अिसका मतलब तो सिर्फ अितना ही होता है कि रोग पर पूरा काबू पानेकी अनुकूलता पैदा हो गअी है। दरारका बन्द होना, अुसका मिटना नहीं कहा जा सकता। यह तो सिर्फ पेटीके ढक्कनको बन्द करने जैसा हुआ। अुस पर जंजीर न चढ़ाअी जाय, तो वह खुल जाय। अिसी तरह दरार सिकुड़कर बन्द हो जाय और अुसके आमने-सामनेके किनारे अेक दूसरेसे सट जायँ, तो भी जब तक अुस पर अुसे भरनेवाले तंतुओंकी कभी न अुखड़नेवाली मुहर न लगे, अुसके खुल जानेका डर रहता है। अिस स्थितिसे बचनेके लिअे पूरी खबरदारीके साथ आरामका सिलसिला जारी रखना चाहिये और शक्ति बढ़ाकर अुसका संचय करना चाहिये। क्योंकि यही वक्त है, जब कायमी असर पैदा होता है।

थोरेकोप्लास्टी अकसीर अिलाज है। अुससे दरारें बन्द होती हैं, बलगम कम होते-होते बनना बन्द हो जाता है, चेतन रजका पैदा होना रुकता है, दूसरे फेफड़ेमें सुधार होता है, रोग काबूमें आ जाता है और काम-काजके लिअे शक्ति प्राप्त होती है। अैसा अिष्ट फल सबको समान रूपसे नहीं मिल सकता, क्योंकि शस्त्रक्रियासे पहले सबकी हालत सरीखी नहीं होती। चीर-फाड़ करानेमें देर हुअी हो, दरार बहुत बढ़ गअी हो, और अुसके किनारे कड़े हो गये हों, फेफड़ेके आस-पासका हिस्सा कड़ा बन गया हो, दरारके अूपरका प्लूरावाला भाग मोटा हो गया हो, नअी पसलीको आनेसे रोकनेका कोअी अुपाय न किया गया हो, पसलियाँ काफी तादादमें निकाली न गअी हों, और वे काफी लम्बाअीमें

काटी न गअी हों, चीर-फाड़के वाद वाहरसे दवाव डालनेका सिलसिला जारी न रह पाया हो, तो फेफडा जितना चाहिये अुतना दवता नहीं, अथवा रोगवाले हिस्सेमें आवश्यक सिकुडन पैदा नहीं होती और अिस वजह से पूरा संतोपजनक फल नहीं मिलता। अनुकूल फलकी प्राप्तिके लिअे अिनमेंसे कुछ कारण तो दूर किये जा सकते हैं, लेकिन कुछ पर कोअी असर नहीं डाला जा सकता। अवयवकी नैसर्गिक शक्ति कितनी होती है और वह किस तरह लाभ पहुँचाती है, अिसे जाननेका कोअी सावन नहीं है और अुसमें सोच-समझकर कोअी हेरफेर करना मुमकिन नहीं है।

संभव है कि चीर-फाड़से पूरी सफलता न मिले, फिर भी अुसकी अुपयोगिता तो है। वहुत सावधानीके साथ चीर-फाड़ करने पर भी कुछ मामलोंमें दरार पूरी-पूरी वन्द नहीं होती, फिर भी वह कम तो होती ही है। अुसके आस-पासका फेफड़ा सिकुड़ता है और रोगके द्वीप जैसी बची हुअी दरार अलग रह जाती है। अुसे वढ़नेका मौक़ा कम मिलता है। चीर-फाड़से पहलेकी दरारकी तरह अब वह खतरनाक नहीं रहती। फेफड़ेके छिद्र — दाग़ — भर जाते हैं, ताक़त भी वढ़ती है और काम-काज भी किया जा सकता है। चीर-फाड़से पहले यह स्थिति आ नहीं सकती। कभी-कभी वाक़ीकी दरार बहुत धीमी गतिसे भरती है और अेक अर्सेके वाद निकम्मी हो जाती है। थोरेकोप्लास्टी जीवनको वढ़ाने और अुसे अुपयोगी वनानेवाली शस्त्रक्रिया है।

थोरेकोप्लास्टीके अन्तमें जो दरार वच रहती है, अुसे पूरनेके लिअे फ्रेनिक नसको निकम्मा वनानेका असर अच्छा हो सकता है। दरारमें वलगम भरा रहता हो, अुसकी मात्रा भी ज्यादा हो और श्वासनलिकाके ज़रिये अुसे निकालना मुश्किल हो, तो ठेठ दरार तक पहुँचनेवाली शस्त्रक्रिया की जाती है। अिसके लिअे छातीमें छेद किया जाता है। अुसके जरिये दरारके अंदर नली अुतारी जाती है और वहाँ रख छोडी जाती है। अिस नलीके ज़रिये दरारमें पैदा होनेवाला कफ वाहर निकाला जाता है। अिस तरीकेसे दरारके वन्द होनेकी आशा

रखी जाती है। अिस शस्त्रक्रियाका ज्यादा प्रचार नहीं हुआ है। अंग्रेज़ीमें अिसे 'सर्जिकल ड्रेनेज' (surgical drainage) कहते हैं, और दस शस्त्रक्रियाओंमे अिसकी गणना की जाती है।

'अेक्स्ट्रा प्लूरल न्युमोनोलाअिसिस' (extra pleural pneumonolysis) नामक शस्त्रक्रिया करनेमे पसली तक पहुँचा जाता है। अिसमें अेक ही पसलीका टुकड़ा काटा जाता है और अिस तरह पसली और प्लूराकी अूपरी तहके बीच जगह तैयार की जाती है। अिस जगहमें पैराफीन, मोम, वगैरा माफिक आनेवाली चीज़ें भरी जाती हैं और अुनके ज़रिये दरारके अूपरवाले भाग पर दबाव डालनेकी और अुसे बन्द करनेकी आशा रखी जाती है। यह क्रिया क्वचित् की जाती है। अिससे थोरेकोप्लास्टीका काम नहीं निकलता।

पसलियों पर अेक और प्रकारकी शस्त्रक्रिया भी होती है, जो 'सुप्रापेरीयोस्टीयल अेन्ड सबकोस्टल न्युमोनोलाअिसिस' (supraperiosteal and subcostal pneumonolysis) कहलाती है। अिसमें फेफड़ेके रोगग्रस्त भागके अूपरकी पसलियोंको पेरीऑस्टीयमके आवरणसे मुक्त किया जाता है, जिससे खुली हुअी पसलियोंके नीचे जगह बन जाती है। अिस जगहमे दबाव डालनेके लिअे अुचित चीज़ें भरी जाती हैं। अिसका अुपयोग भी कम ही होता है। थोरेकोप्लास्टीके साथ अिसकी कोअी तुलना नहीं की जा सकती।

फ्रेनिक नसकी तरह पसलियोंके पासवाली नसोंको सुन्न बनाया जाता है। अिसे 'मल्टीपल अिण्टरकोस्टल नर्व पैरेलिसिस' (multiple intercostal nerve paralysis) या 'न्युरेक्टॉमी' (pneurectomy) कहा जाता है। अिसकी वजहसे साँस-अुसाँस लेनेमें फेफड़ोंका खुलना, बंद होना कम हो जाता है और फेफड़ेको आराम पहुँचता है। यह शस्त्रक्रिया भी क्वचित् ही करवाअी जाती है।

'स्केलीन' (scalene) नामक स्नायु श्वासक्रियामें भाग लेते हैं। अिन स्नायुओंका कुछ हिस्सा काट डाला जाता है। अिस शस्त्र-

क्रियाको ‘स्केलीनीयेकटॉमी’ (scaleniectomy) कहते हैं। अिसमें लाभके मुकाबले जोखिम ज़्यादा है। अिसका बहुत ही कम अुपयोग किया जाता है।

अिन चारों शस्त्र-क्रियाओंकी गणना दसमें होती है, लेकिन अिनकी अुपयोगिता कम है। रोगके शुरूमें अिनका विचार करनेकी जरूरत नहीं होती। तब तो हवा भरने या फ्रेनिक नसको सुन्न करनेसे काम चल जाता है। जब रोग ज्यादा बढ़ जाता है, तो ‘थोरेकोप्लास्टी’ का विचार किया जाता है, क्योंकि जो मदद अुससे मिलती है सो अिन चारोंमेंसे अेकसे भी नहीं मिलती। सार-सँभालमें अिनका स्थान बहुत गौण है।

क्षय किसी समय असाध्य रोग था। निदानकी पद्धतिमें सुधार होने और ‘आहार-विहार-योग’ का प्रबन्ध होनेसे वह बहुतोंके लिअे सुसाध्य बन गया। फिर भी जो बहुतसे असाध्यकी कोटिमें रह जाते या खिसक जाते थे, अुनमें से कअियोंके लिअे शस्त्रक्रिया लाभदायक सिद्ध हुअी है। वह राजरोगकी चिकित्साका अेक सम्मानित अंग है। ‘आहार-विहार-योग’ की पद्धतिको वह विशेष अुपयोगी बनाती है। वह निराशाको दूर करके आशा बँधाती है। अवसर आने पर समय रहते अिसका प्रयोग कर लेनेमें हित है।